अमानुषिक हत्यायें

उस दिन पुस्तकालय मे बहुत कम पाठक थे। कुछ देर तक तो मैं पत्र-पत्रिकाये उलटता रहा, फिर जिस प्राचीन ग्रंथ की खोज मे मैं आया था उसका नाम एक स्लिप पर लिख कर मैंने पुस्तकालय के चपरासी को दे दिया। चपरासी ने उसे पढते ही सिर हिलाया।

"बाबूजी", उसने कहा, "यही किताब आज ही उन बाबूजी ने अपने नाम निकलवाई है।"

उन बाबूजी से उसका अभिप्राय जिस भद्र पुरुष से था उन्हें मैं पुस्तकालय में उसी स्थान पर बहुधा पढते देखा करता था। मैंने एक प्राचीन पुस्तक लेनी चाही थी, उसी को उसी दिन कोई दूसरा ले, यह यद्यपि कुछ आश्चर्य-जनक बात न थी तो भी...

पता नहीं क्यों, मुझे क्या सूझी कि मैं उस भद्र पुरुष के पास गया और अचानक पूछ बैठा—"महाशय, आपका शुभ नाम क्या है?"

उसने पहले तो सिर ही नहीं उठाया, कदाचित् समझा कि किसी दूसरे से प्रश्न किया गया है, पर जब मैं कुछ समय तक वहीं खड़ा रहा तो उसने धीरे से कहा, "हूँ, आपने क्या नाम पूछा?"

"जी।"

"क्षमा कीजियेगा, मैं पुस्तक पढने मे तल्लीन था। मुझे लोग अजित—प्रजित बोध कहते हैं।"

यहीं से मेरी और उसकी मित्रता का सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे हम अभिन्न मित्र हो गये। अजित का निवासस्थान मेरे घर से दो फर्लांग के फासले पर था; इसलिये हम एक दूसरे के यहाँ आने-जाने

लगे। अजित उत्तम कुल का था, पर उसके पिता अपनी सम्पत्ति पर इतना अधिक कर्ज छोड गये थे कि यदि उसके घर की ईंट-ईंट नहीं बिक गई, तो इसका कारण उसके कर्जदारों की सज्जनता ही थी। और इसी बची खुची सम्पति से वह बडी कशमकश से अपना गुज़ारा कर लेता था।

एक दिन मैंने उससे पूछा—"क्यों अजित, तुम दिन भर घर बैठे क्या किया करते हो?"

"कुछ तो नहीं। घर पर मैं दिन भर बैठा नहीं रहता, संध्या समय घूमने निकलता हूँ।"

मैं ठठाकर हँसा, वह अप्रतिभ हो गया। वह बडा विचारशील और बाल की खाल निकालने में बडा प्रवीण था। कलकत्ते ऐसे विशाल नगर में मैं ऐसा तीव्रबुद्धि मित्र पा कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और समय-असमय उसकी सलाह लिया करता।

कलकत्ता मैं कुछ समय के लिये ही आया था और एक किराये के मकान में रहता था। एक दिन अजित ने मुझसे कहा, "यदि तुम मेरे ही घर पर रहो, तो क्या तुम्हें कुछ असुविधा हो?"

मैं खाने पीने से खुश हूँ। मैंने शीघ्र ही उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, तो इस गरज़ से नहीं कि किराया बचेगा, बल्कि इसलिये कि मैं उसके साथ अधिक समय बिताने का लोभ संवरण न कर सका। उसके घर पर रह कर जो कुछ भी मैं खर्च करूँ उसमें बाधा न डालने का उसने आश्वासन दिया।

यदि कोई हमारी दिन-चर्या के विषय में अधिक जानता तो निश्चय ही वह हमें पागल समझता—पर ऐसा पागल जो किसी को हानि नहीं पहुँचाता। हमारे यहाँ कोई न आता, क्योंकि हम कभी किसी से मिलने न जाते। हमारा एकान्त निवास पूर्ण था। मैंने अपने पुराने मित्रों से भी अजित के घर का पता न बताया था। इसलिये

कोई मेरा नया निवास न जानता था और अजित तो वर्षों से कलकत्ता मे रहता हुआ भी किसी से परिचित न प्रतीत होता था।

पता नहीं क्यों, मेरी सनक कहो अथवा मेरे मित्र की, हमे रात्रि से बडा प्रेम हो गया। रात्रि, दिवस में तो हमारे साथ रह नहीं सकती थी, इसलिये हम प्रातःकाल होते ही चारों ओर खिडकियाँ और दरवाजे बन्द कर लेते थे। फिर बिजली जला कर दिन भर पढते लिखते अथवा वार्त्तालाप करते रहते थे। इस भाँति अपने कार्यों में हम निमग्न रहते जब तक कि सचमुच रात्रि न आ जाती।

तब हम एक दूसरे के हाथ में हाथ डाल कर घूमने निकलते। कभी दिन के विषयों पर वार्त्तालाप करते, कभी चुपचाप उस विशाल नगर के कोलाहल को देखते-सुनते। घर लौटते-लौटते कभी तो आधी रात तक हो जाती।

मै स्वतः अपने मित्र की कुशाग्र बुद्धि की सराहना करता। विभिन्न सूत्रों को एकत्र करने अथवा विच्छेद करने की उसमे अद्वितीय योग्यता थी। अणुवीक्षण करने में उसे आनन्द भी कम न आता था। कभी-कभी तो वह आत्म-प्रशंसा करते हुये कहता—"देखो, अधिकांश पुरुष अपने वक्ष की खिडकियाँ खोले रहते हैं, जिनसे उनके हृदय को भली-भाँति पढा जा सकता है।"

उसने अपने कथन की सत्यता कई बार, मेरे विषय में ही, आश्चर्यजनक बातें कह कर प्रमाणित की। ऐसा करते समय वह इस लोक का प्राणी न रह जाता, उसकी सोई हुई विवेचन-शक्ति जाग उठती और निरपेक्ष रीति से वह मुझे अपनी कार्यप्रणाली समझाता। पुस्तकों में लीन अजित के रूप की, आलोचनात्मक अजित से तुलना करने पर मुझे आश्चर्य होता।

उस बङ्गाली की बातों से कभी-कभी मैं बड़ा प्रभावित होता। एक ऐसी ही घटना का वर्णन मैं करता हूँ —

हम दोनों अपने-अपने विचारों में निमग्न, एक गदी लम्बी गली से चले जा रहे थे कि अचानक उसने कहा, "वह ठिगने कद का पुरुष है, तुम ठीक सोचते हो और किसी सर्कस ही में वह चमक सकता है।"

"इसमे सदेह ही क्या है ?" मैंने उत्तर दिया बिना इस बात पर लक्ष्य किये कि उस समय अजित ने मेरे विचारों का अपूर्व अध्ययन किया था। दूसरे ही क्षण मैंने अपने को सुव्यवस्थित किया और तब मैं अचम्भे मे पड गया।

"अजित", मैंने गभीर स्वर में कहा, "मैं समझ नहीं सकता। यह मेरी समझ मे बाहर की बात है। आखिर तुमने कैसे जाना कि मैं यही सोच रहा था—?" यहाँ मैं रुक गया। अपनी धारणा की पुष्टि करने के लिये कि क्या उसने सचमुच मेरे विचारों को ठीक-ठीक समझा था।

"निखिल के विषय में", उसने कहा, "तुम चुप क्यों हो गये ? तुम अभी अपने आप सोच रहे थे कि उसका ठिगना क़द उसके श्रेष्ठ अभिनेता बनने मे बाधक है ?"

उस समय मैं यही सोच रहा था। निखिल एक जूते का व्यापारी था, जिसे स्टेज की कुछ ऐसी सनक सूझी थी कि उसने अपना पेशा छोड़ कर एक दुःखान्त नाटक मे 'हीरो' का पार्ट किया था, जिसमें वह सर्वथा असफल प्रमाणित हुआ था।

मेरी उत्कंठा की सीमा न थी। मैंने उसके कंधे को हिला कर कहा, 'ईश्वर के लिये मुझे अपनी कार्यप्रणाली—यदि इसे कोई कार्य-प्रणाली कह सकता है—समझाओ, जिससे तुमने मेरे हृदय की बात जान ली ?"

वास्तव में मैं उससे कहीं अधिक उत्कंठित था जितना मैं शब्दों के द्वारा कह सकता था।

"वह फलवाला था", उसने कहा, "जिसने तुम्हारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि जूता बनानेवाला निखिल प्रसिद्ध नाटकों में 'हीरो' का पार्ट करने की क्षमता नहीं रखता।"

"फलवाला!" मैंने आँखें फाड कर कहा, "मैं किसी फलवाले को नहीं जानता। तुम कह क्या रहे हो?"

"वही फलवाला जिससे इस सडक पर मुडने के पहले तुम टकरा कर भूमि पर गिर पडे थे। इस बात को कोई पद्रह मिनट हुये होंगे।"

तब मुझे ख्याल आया कि इस गली में मुड़ने से पहले मैं एक सेब बेचनेवाले से टकरा कर गिर पडा था; पर इससे और निखिल से क्या सम्बन्ध था, यह मैं न समझ पाया।

मुस्कराते हुये मेरे साथी ने कहा, "अभी तुम स्वयं समझ जाओगे। मैं उस समय से अब तक की प्रत्येक घटना का सिलसिलेवार वर्णन करता हूँ।"—

"निखिल, ध्रुपद, ध्रुव, धुआँ, फलवाला।" मुझे आश्चर्य हुआ इन शब्दों में एक दूसरे से इतना कम सम्बन्ध था। फिर भी मैं जान गया कि इन्हीं से अजित ने मेरे मस्तिष्क को पढा था।

उसने कहा—"हम लोग घोडों के विषय में वार्त्तालाप कर रहे थे, जब तुम फलवाले से टकरा कर गिर पडे। तुम कूड़ों के एक ढेर पर गिरे थे, जिससे धुँआ उठ रहा था। तुम उठ कर कुछ बुदबुदाये, तब तक इस गली का मोड आ गया था। तुम इस मार्ग से परिचित नहीं हो क्योंकि जब मैं इस ओर मुड़ा था, तो तुमने प्रश्नभरी एक दृष्टि मेरी ओर फेरी थी कि क्या मैं ठीक रास्ते से चल रहा हूँ। मेरे कुछ न कहने पर तुमने ऊपर सिर उठा कर आकाश में ध्रुवतारा ढूढने की चेष्टा की। मुझे विश्वास हो गया कि धुवाँ, ध्रुव मेरे विचार ठीक रास्ते पर हैं। कल के समाचार-पत्र में जूतेसाज़ निखिल के विषय में ज़ोरों से आलोचना प्रकाशित हुई थी और एक कार्टून में

'एक जूतेवाला ध्रुपद राग बजा रहा है', यह दिखाया गया था। ध्रुव, ध्रुपद। और उस समय हम दोनों में इस विषय को लेकर काफी बहस भी हुई थी। तुमने निखिल के विषय में सोचा, यह तुम्हारी मुस्कराहट से विदित हो गया। फिर तुम तन कर चलने लगे, इससे मैंने निष्कर्ष निकाला कि तुमने निखिल के अच्छे अभिनेता न बन सकने का कारण उसका ठिंगना कद ही सोचा। और इसी समय मैंने तुमसे कहा—"निखिल नाटे क़द का है और किसी सर्कस ही में चमक सकता है।"

× × ×

इस घटना के कुछ दिनों बाद हम नवयुग समाचार-पत्र देख रहे थे। उसमें यह समाचार छपा था—

"आश्चर्यजनक हत्यायें—आज प्रातःकाल तीन बजे—मुहल्ले के निवासियों की नींद भयानक चीखों से उचट गई। ये आवाज़ें प्रमोद-निकुंज की तीसरी मंजिल से आ रही थीं, उसमें केवल दो स्त्रियाँ—श्रीमती लांडिगस और उनकी पुत्री रहती थीं।

"एक कुरसी पर खून से सना एक उस्तुरा था। एक ओर दो-तीन मोटे खून से भरे बालों के गुच्छे थे, जो जड़ से उखड़े प्रतीत होते थे। जमीन पर दो रुपये, एक हीरे की ईयर-रिंग और दो थैले थे। थैलों में एक हज़ार रुपये और चार हज़ार रुपये के नोट थे।

"एक दराज खुला हुआ था, जिसकी चीजें तितर-बितर थीं, यद्यपि उसमें अभी भी बहुत-सी वस्तुयें थीं। बिस्तरे के नीचे (पलंग के नहीं) एक लोहे का सेफ था जो खुला था; उसके दरवाजे में अभी भी ताली लगी थी। सेफ में कुछ पुराने पत्रों और इधर-उधर के काग़जात को छोड़ कर और कोई वस्तु न थी। श्रीमती खाडेराव का कहीं पता न था, लेकिन उसी कमरे से मिले रसोईघर के चूल्हे में एक बड़ा काला ढेर दिखाई पड़ा। उसमें खोज करने पर (कितनी भयानक बात है!) कुमारी खाडेराव का मृत शरीर मिला।

"यह चूल्हा पतला और लम्बा है। इसमें बहुत दूर तक उनका शरीर जबरदस्ती ठुँसा हुआ था। बड़ी मुश्किल से तीन पुरुषों ने उसे खींच कर बाहर निकाला। शरीर अभी तक गर्म था, जिससे प्रतीत होता था कि उनकी मृत्यु हुये अधिक समय नहीं गुज़रा। शरीर में बहुत से खरोंच थे, जो कदाचित् शरीर को बलपूर्वक उस पतले चूल्हे में ठूँसने से पड़ गये थे। चेहरे पर भी कई खरोंच थे, पर गरदन पर काले-काले नाखूनों के दाग थे। किसी ने गरदन दबा कर हत्या की है।

"एक दूसरे कोने में श्रीमती खाडेराव की लाश मिली। उसे उठाने की चेष्टा में सिर धड़ से अलग हो गया। शरीर और मुख दोनों ही इतनी बुरी तरह से जख़्मी थे कि पहिचान में न आते थे।

"इस भयानक रहस्य का उद्घाटन करने के लिये अभी तक कोई सूत्र नहीं मिला है।"

दूसरे दिन समाचार-पत्र में उन हत्याओं के विषय में छपा—

"रहस्यमयी हत्याये—इस सम्बन्ध में कइयों का बयान लिया गया है, पर कुछ सुराग नहीं मिलता। नीचे हम सब के बयान दे रहे हैं—

"मैदुआ—धोबिन कहती है कि वह माँ-बेटी के कपडे तीन वर्ष से धोती आई है। माँ-बेटी एक दूसरे को बहुत प्यार करती थीं। हर महीने ठीक समय पर उसे धुलाई मिल जाती थी। मेरा विचार है कि वह लोगों का हाथ देखकर धन उपार्जन करती थीं। यह भी सुनने में आता था कि वे बड़ी धनी थीं। कभी उसने घर पर कपड़ा लेते अथवा देते समय किसी तीसरे को नहीं देखा। उसे विश्वास है कि कोई नौकर, नौकरानी उस घर में न थी। तीसरी मंजिल को छोड़ कर कहीं फर्नीचर न था।

"मियाँ अशरफ, तम्बाकूवाला कहता है कि वह चार वर्ष से समय समय पर श्रीमती खाँडेराव के हाथ तम्बाकू बेचता रहा है। श्रीमती और कुमारी खाडेराव छ. साल से उस घर में रहती थीं। उसके पहले एक जौहरी उस घर को किराये पर लेकर रहता था। वह नीचे के कमरों को दूसरों को किराये पर दे देता था। इससे श्रीमती खाडेराव अप्रसन्न हुई और स्वयं ही उस घर में आकर रहने लगीं। वृद्ध महिला सनकी थीं। गवाह ने इतने समय में लड़की को पाँच या छः बार देखा था। दोनों अकेले ही रहती थीं, काफी धनी थीं। पड़ोसी कहते थे कि श्रीमती खाडेराव ज्योतिष विद्या से कमाती-खाती थीं, पर मैं इसका विश्वास नहीं करता। उस में और किसी को मैंने कभी जाते नहीं देखा। दो-चार बार कुलियों को या डाक्टर को अवश्य जाते देखा था।

"हिम्मतसिंह पुलिस का सिपाही कहता है कि तीन बजे उसे वहाँ बुलाया गया। घर के बाहर पचीस-तीस व्यक्ति खड़े थे और दरवाज़े को तोड़ने की चेष्टा कर रहे थे। दरवाज़ा आसानी से तोड़ डाला गया। तब तक चीखें सुनाई पड़ रही थीं, फिर अचानक बन्द हो गईं। वे चीखें किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की प्रतीत होती थीं जो नारकीय यन्त्रणा भोग रहे हों। धीरे-धीरे कराहने की आवाजें भी उसने सुनी। वह सबके आगे चलता हुआ ऊपर गया। पहली सीढ़ी चढ़ने पर उसे दो तेज़ और गुस्से से भरी आवाजें सुनाई पड़ीं—फिर एक तीखी भर्रानी आवाज़। अन्तिम स्वर उसे आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। पहली आवाज किसी बङ्गाली की थी। पर पूर्ण रूप से उसे विश्वास है कि वह किसी स्त्री का स्वर न था। कदाचित् "हाय रे," "और क्या करते हो" शब्द भी कहे गये थे। दूसरी तीखी आवाज़ किसी विदेशी की थी। कह नहीं सकता, पुरुष की अथवा स्त्री की। पता नहीं क्या कहा गया; पर भाषा कदाचित् उड़िया थी।

"हैनरी दोबल नामक एक पड़ोसी ने हिम्मतसिंह की बातों का समर्थन किया। उसने तीखी आवाज़ के विषय में कहा कि वह श्रीमती अथवा कुमारी राडेराव की न थी। किसी मद्रासी की हो सकती थी। वह मद्रासी भाषा नहीं जानता, केवल बोलने के ढङ्ग को कुछ-कुछ पहिचानता है।

"सतसिंह होटलवाला पंजाबी है। बँगला नहीं जानता। उसने करीब दस मिनट तक चीखें सुनीं—बड़ी दर्दनाक, खून जमा देने वाली। तीखी आवाज़ किसी पुरुष की थी, स्त्री की नहीं। पर पता नहीं क्या कहा गया। किसी पुरुष अथवा स्त्री की वैसी आवाज हो सकती है, इसमें उसे सन्देह है।

"रमेशदत्त नेहर ने इजहार दिया—आठ साल हुये, मेरे यहाँ थोड़ा-सा धन श्रीमती राडेराव ने जमा कराया। तब से कई बार थोड़ा-

थोड़ा और किया। मृत्यु से तीन दिन पहले ही कुल जमा पाँच हजार रुपये निकलवा लिये—एक हज़ार रुपये, चार हजार के नोट।

"वेंकटराव पत्रकार, घर में घुसा था। आवाजें सुनीं थीं। मद्रास प्रान्त की प्रायः सभी भाषाएँ भी जानता है। तीसरी आवाज़ किसी मद्रासी की न थी, मराठा की हो सकती है। वह मराठी नहीं जानता। तीसरी आवाज दूसरी भर्रानी आवाज़ से कहीं तेज थी। भर्राती आवाज़ किसी बङ्गाली की थी। कदाचित् उसने 'हाय बाप रे' कहा था।"

इन चारों गवाहों ने पूछने पर बताया कि जिस कमरे में लाशें पाई गईं उसका दरवाज़ा बन्द था। कहीं से किसी प्रकार की आवाज़ नहीं आ रही थी। दरवाजा तोड़ने पर कोई दिखाई न पड़ा। सामने और पीछे वाले दोनों कमरों की खिड़कियाँ भीतर से बन्द थीं। सामने के दो कमरों के बीच का दरवाज़ा बन्द था, पर उसमें ताला नहीं पड़ा था।

घर की भलीभाँति तलाशी ली गई। तीसरी मंजिल के ऊपर एक फाटक का दरवाज़ा था, पर वह बरसों से न खोला गया था। दो आवाज़ों के सुनने और दरवाज़े के तोड़ जाने के बीच के समय का कोई मान मिनट आता था कोई पाँच।

घाव किसी भारी वस्तु—जैसे कुरसी—के हो सकते थे। यदि किसी के बड़े शक्तिशाली हाथों ने ऐसा किया हो। कोई स्त्री ऐसी शक्तिशाली नहीं हो सकती। मृतक का सिर जब डाक्टर ने देखा, धड़ से अलग था। किसी बहुत तेज औजार, कदाचित् उस्तुरे से, गला काटा गया था।

और कई गवाहों ने बयान दिया पर काम की कोई बात न कही। ऐसी लोमहर्षक और भेदभरी घटना कलकत्ता में कभी नहीं हुई। अपराधी का कोई पता नहीं लगता। पता चले भी कैसे, कोई सूत्र ही नहीं है।"

दूसरे दिन के अखबार मे प्रकाशित हुआ—"रमेशदत्त बैंकर का क्लर्क शिवसहाय पकड लिया गया है। यद्यपि पहले कही गई बातों के सिवा और विशेष कुछ ज्ञात नहीं हुआ।

× × ×

अजित को इस रहस्यमयी घटना मे बडा आनन्द आ रहा था, यद्यपि उसने मुझसे इस विषय मे कुछ नहीं कहा। पर जब क्लर्क के पकडे जाने का समाचार उसे मिला, तो उसने इस विषय में मेरी राय पूछी।

मैंने कहा—"जो सारा शहर कहता है, वही मैं कहता हूँ। इस रहस्य का भडाफोड नहीं किया जा सकता। कोई सूत्र ही नहीं है जिससे हत्यारे का पता चले।"

अजित ने कहा—"हमे भुलावे में न पड़ना चाहिये। इस नगर की पुलिस का तरीका मुझे पसन्द नहीं। ये लोग चालाक अवश्य हैं, पर इन्हें सिलसिलेवार घटनाओं को समझने की शक्ति नहीं। कभी-कभी ये सफल हो जाते हैं, तो केवल परिश्रम से अथवा भाग्य से। जहाँ परिश्रम या भाग्य साथ नहीं देता, वहाँ सिर पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं। ये लोग कमरे के भीतर ही सब कुछ ढूंढना चाहते हैं। दूर से देखने की इनमें क्षमता नहीं।"

"ऐसा जान पड़ता है कि अब मुझे स्वयं यह मामला हाथ में लेना

पड़ेगा और इसमें मज़ा ही आयेगा।" मैंने मन ही में सोचा,—'मज़ा! कहीं लेने के देने न पड़ जायँ, पर मैं कुछ न बोला। अजित कहता गया—"शिवसहाय को मैं जानता हूँ। उसने एक बार मेरे साथ भलाई की थी। हम स्वयं जाकर हत्याकाण्ड के स्थान को देखेंगे। मैं पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट को जानता हूँ इसलिये आसानी से हम खोज-बीन करने की आवश्यक आज्ञा मिल जायगी।"

आज्ञा मिल गई, और शाम को हम घूमते हुये वहाँ पहुँचे। हमें घर ढूँढने में कोई कठिनाई न हुई। क्योंकि अभी तक बहुत से लोग उस आश्चर्यजनक घटना की बात सुनकर उसे देखने आते रहते थे।

हम लोग घर के भीतर जाने के पहले उसके पीछे गये। अजित ने आस-पास के घरों, खम्भों आदि का भली भाँति निरीक्षण किया। फिर हम घर के द्वार पर आये और सतरी को पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट का आज्ञा-पत्र दिखाकर भीतर गये।

कमरे में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया गया था। मृत शरीर उसी भाँति पड़े थे। अखबार में जो कुछ प्रकाशित हुआ था, उसके सिवा मुझे और कुछ न दिखाई दिया। अजित एक आतशी शीशा लेकर एक चीज़ को टटोलता-बताता रहा। हमने दूसरे कमरे की भी परीक्षा की। जहाँ हम जाते थे, हमारे साथ एक पुलिस का सिपाही रहता था। रात्रि के दस बजे हम बाहर आये। रास्ते में अजित, थोड़ी देर के लिये, एक दैनिक पत्र के कार्यालय में गया। फिर हम घर लौटे।

अजित ने कहा—"समाचारपत्रों में मूर्खता भरी बातें कही गई है। तुम भी उनकी-सी बातें करने लगे। अच्छा, ध्यान देकर सुनो। पुलिस को कोई सूत्र नहीं मिला, केवल इसलिये कि वह हत्याओं का कारण ढूँढना चाहती है। उसे हत्याओं से कोई खास मतलब नहीं। फिर वह समझ नहीं पाती कि कौन भाषा उस तीखे स्वर वाले जन्तु के मुँह से निकली थी..."

बात काट कर मैंने कहा, "जन्तु!"

"हाँ, जन्तु! हम कैसे जानते हैं कि वह कोई मनुष्य ही था। खैर, अभी इस बात को रहने दो। पुलिस को एक बात और भुलावे में डालती है—वह यह, कि हत्यारे उस कमरे से बाहर कैसे गये और वह भी इतनी शीघ्रता से कि कुछ ही मिनटों के भीतर उनका कहीं पता न था। फिर इतनी नृशसतापूर्ण हत्या से भला पुलिसवाले घबरा न जायँ, तो क्या करें। पहले कभी ऐसी घटना हुई नहीं। नूतनता के मर्ज़ की पुलिसवालों के पास कोई दवा नहीं। पर सच पूछो तो जितनी कठिन समस्या पुलिसवालों को प्रतीत होती है, उतना ही मेरे लिये उसका हल करना सरल प्रतीत होता है। समझे?"

मैं उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था। क्या उसने रहस्य का उद्घाटन कर लिया था?

उसने कहा—"मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ उस पुरुष की जो यद्यपि इन भयानक हत्याओं के लिये जिम्मेदार नहीं, फिर भी वह किसी भाँति इस घटना में लिप्त है। ईश्वर न करे कि वह इसके लिये जिम्मेदार हो, क्योंकि इसी पर मेरे निष्कर्षों की सत्यता निर्भर है।"

कुछ देर चुप रह कर वह फिर बोला—"वह किसी क्षण इस कमरे में आ सकता है। यह भी सम्भव है कि वह न आये; पर मुझे विश्वास है कि वह अवश्य आयगा। और यदि वह आये, तो हमारे लिये यह आवश्यक होगा कि हम उसे रोक रखें। यहाँ दो पिस्तौलें हैं; और हम

दोनों जानते हैं कि समय पड़ने पर इन्हें किस तरह काम में लाया जाय।"

मैंने बिना कुछ कहे एक पिस्तौल ले ली। मैं उसकी बात समझ नहीं पा रहा था। मैंने पहले ही बतलाया है कि ऐसे समय वह इस लोक का प्राणी न रह जाता था। अवश्य ही वह मुझसे बातें कर रहा था, पर उसके स्वर से, यद्यपि वह ज़ोर से नहीं बोल रहा था, ऐसा प्रतीत होता था कि वह दूर पर बैठे किसी पुरुष को कुछ समझा रहा हो।

उसने कहा—"वे आवाज़ें श्रीमती लाडेराव अथवा उनकी कन्या की न थीं, इतना तो सभी को ज्ञात है। इससे निश्चित हो जाता है कि मां ने पहले बेटी की हत्या कर फिर स्वयं हत्या की, यह कथन सत्य नहीं हो सकता। मैं यह केवल तारतम्य के लिये कह रहा हूं—क्योंकि मां में इतनी शक्ति न थी कि वह बेटी की लाश को चूल्हे के भीतर इतनी दूर तक घुसा दे कि उसे निकालने में तीन तगड़े पुरुषों को अपनी पूरी ताकत लगानी पड़े। और फिर जिस तरह के घाव हैं, उनसे आत्म हत्या की धारणा बिलकुल निर्मूल सिद्ध होती है। इसका अर्थ यह है कि किसी तीसरे ने इन दोनों की हत्या की। और उन्हीं की आवाज़ लोगों ने सुनी थी। अच्छा, अब हम लोगों को गवाहों के बयानों की विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिये। क्या तुम ने कोई विशेषता लक्ष्य की?"

नहीं कि उनमें मतभेद है, बल्कि यह कि पंजाबी, मराठी, मद्रासी, युक्त-प्रान्तीय, अंग्रेज, सभी को विश्वास है कि वह उनकी मातृ-भाषा नहीं। सभी उसे किसी दूसरे प्रदेश की भाषा बताते है। पर उन भाषाओं के जाननेवाले उस भाषा को जानने से इनकार करते हैं। अब जो सोचने की बात है, वह यह कि उस तीखी आवाज के स्वर मे कोई विशेषता अवश्य रही होगी, कि उसे भारतवर्ष के करीब सभी मुख्य भाषा-भाषी पहिचानने मे असमर्थ रहे, पर साथ ही साथ सबको उसमे कुछ न कुछ पहिचान मालुम पडती थी। तुम कह सकते हो कि यह किसी दूसरे महाद्वीप की भाषा होगी, पर मैं इस विषय में इस समय अधिक न कहूँगा। एक गवाह ने उसे तीखी के बजाय मोटी कहा है। पर किसी ने उसका कोई भी शब्द नहीं समझा।"

"मैं नहीं जानता," अजित कहता गया, "कि तुम मेरी बातों को भली-भाँति समझ पा रहे हो अथवा नहीं! पर मैं सिलसिलेवार ही चलूँगा। जितने निष्कर्ष मैंने निकाले हैं, उन्हीं पर अब हमें आगे बढ़ना है।

"हमें देखना है कि हत्यारे किस मार्ग से बाहर गये। हम दोनों ही मानेंगे कि यह भूत-प्रेत का काम नहीं हो सकता। तो फिर हत्यारे किस मार्ग से कमरे से बाहर निकले इसकी खोज करना अनिवार्य है। एक-एक करके हमको सब रास्तों को ठोंकने पीटने दो।

"यह तो विदित ही है कि हत्यारे उस कमरे में अवश्य गये थे, जिसमें श्रीमती लाडेराव और उनकी कन्या की हत्या हुई और वे तब तक भी वहाँ थे जब लोग पहली सीढ़ी पर चढ रहे थे। इसलिये हमको बस दो कमरों से उनके बाहर जाने का रास्ता ढूँढ़ना है—एक बड़ा कमरा, दूसरा उसके पास वाला स्लीपिंगरूम। पुलिस ने भली-भाँति देख लिया है कि कोई गुप्त द्वार कहीं नहीं है। कमरे से बाहर निकलने के दोनों दरवाजे भली-भाँति बंद थे, उनकी तालियाँ भीतर लगी थीं।

अब केवल खिड़कियाँ बचीं। इन्हीं से हत्यारे भागे होंगे। निःसन्देह वे इसी मार्ग से गये होंगे, इस बात को जानते हुये हमें ऊपर से असम्भव प्रतीत होती धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करना होगा। और मैं वैसा करने में सफल भी हुआ हूँ।

"अच्छा तो, बड़े कमरे में केवल दो खिड़कियाँ हैं। एक तो करीब-करीब पूरी फर्नीचर से छिपी हुई है। उसका नीचे का भाग एक आल्मारी से छिपा है जिसे खिसकाना सहज नहीं है। दूसरी खिड़की भीतर से अच्छी तरह बन्द है। उसका शटर उठाना आसान नहीं है। क्योंकि एक मोटी कील फ्रेम में बायीं ओर लगी है और काफी धँसी हुई है। पहली खिड़की में भी यही बात है—उसमें भी शटर उठाना आसान नहीं है। पुलिस इतने से ही सन्तुष्ट हो गई कि इधर से कोई बाहर न गया होगा। इसलिये उन लोगों को यह न सूझा कि वे कीलों को निकाल कर खिड़कियों को खोलें।

"मैंने खिड़कियों की भली-भाँति परीक्षा की, क्योंकि मैं जानता था कि हो न हो, हत्यारे इसी मार्ग से गये होंगे। इसलिये मुझे असम्भव प्रतीत होने विषय को भी सम्भव बनाना होगा।

उठाने की चेष्टा न की। अब मुझे विश्वास होने लगा कि मैं ठीक रास्ते पर हूँ। पर अभी मुझे उस कील की कार्रवाई समझनी थी।

"मैंने कील फिर उसी स्थान पर लगा दी। इस मार्ग से जाते हुये किसी पुरुष ने खिड़की बन्द कर दी होगी और स्प्रिङ्ग अपने आप लग गई होगी, यह तो सम्भव था, पर कील . ! कील किस तरह फिर वहाँ लग गई !"

"मैंने फिर मस्तिष्क पर ज़ोर डाला। हत्यारे और किसी मार्ग से ही जा नहीं सकते थे। अवश्य वे इसी रास्ते से गये होगे। इसलिये यदि दोनों खिडकियों में स्प्रिङ्ग एक ही प्रकार की हैं, तो अवश्य ही दोनों ओर की कीलों मे फर्क होगा अथवा उनके लगे रहने मे। इसलिये आलमारी के ऊपर चढ कर मैंने दूसरी कील को बिना छुये देखा। फिर मैंने उसकी छिपी हुई स्प्रिंग भी देखी। इसमे कील बिलकुल उसी तरह गडी हुई थी—पूरी धँसी थी सिर तक।

"फिर भी मैं निरुत्साह नहीं हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि मैं सिलसिलेवार कार्य कर रहा हूँ। और सोचते-सोचते मैं कील तक आ गया था। अब मुझे पीछे न लौटना था, क्योंकि भ्रान्ति की सम्भावना तक न थी। मैंने देखा कि कील बिलकुल दूसरी कील की भाँति प्रतीत होती थी, पर इससे क्या, मैं गलत रास्ते पर नहीं हो सकता था, क्योंकि मैं सिलसिलेवार चला था। 'अवश्य इस कील में कुछ गडबडी है', मैंने सोचा, और उसे धीरे से खींचा तो कील का सिरा और थोड़ा भाग लकड़ी के एक टुकडे के साथ निकल आया। आधी कील अभी भी गडी थी। बस, समस्या हल हो गई। मैं ध्यानपूर्वक देखा—कील बहुत पहले ही टूट गई होगी, किसी ने हथौडी से उस भाग को वैसे ही ठोंक दिया होगा, जिससे खिड़की खराब न लगे। मैंने ज़रा-सा ज़ोर लगा कर कील को वैसा ही कर दिया। अब काठ मे जोड़ का पता न चलता था। स्प्रिंग दबा कर मैंने धीरे से शटर

उठाये; कील का सिर वैसे ही उसके साथ उठा। मैंने खिड़की बन्द कर दी और कील फिर पूरी प्रतीत होने लगी।

"जैसा अभी मैंने तुमसे कहा, यहाँ तक तो समस्या हल हो गई। हत्यारा इसी ओर से बाहर गया होगा। उसके बाहर निकल जाने के बाद खिड़की किसी तरह बन्द हो गई होगी, स्प्रिङ्ग तो अपने आप लग ही जाती थी। और इसी स्प्रिङ्ग के कारण खिड़की न खुलती थी, जब कि पुलिस ने सोचा कि वह कील लगी रहने से नहीं खुलती। इसलिये पुलिस ने इस दिशा में खोज न की।

"दूसरा प्रश्न यह है कि हत्यारा कैसे उतरा? इस विषय का अध्ययन मैंने घर में घुसने के पहले ही कर लिया था, जब मैं तुम्हारे साथ उस मकान के पीछे गया था। उस खिड़की से साढ़े पाँच फुट दूर पर एक मोटा बिजली का खम्भा है। मैंने कहा है न साढ़े पाँच फुट की दूरी पर! इतनी दूर से किसी के लिये उस खिड़की तक पहुँचने की सम्भावना नहीं है। उसके भीतर जाने का प्रश्न तो बाद में उठता है।

से जोर से उछलने के अर्थ यह होंगे कि शटर अपने आप बन्द हो जायँगे और स्प्रिङ्ग लग जायगी।

"मैंने तुमसे अभी कहा न था कि ऐसे कार्य के लिए बड़ी फुर्ती की आवश्यकता होगी। इस बात को ध्यान मे रखो। मेरे इस कथन के दो अर्थ हैं—एक तो ऐसा दुस्साध्य कार्य करना भी सम्भव है, पर साथ ही इसके कर्त्ता को बहुत ही स्फूर्ति वाला होना चाहिए।

"तुम कह सकते हो कि अपनी धारणा सत्य सिद्ध करने के लिए मैं विरोध की परवाह ही न करूँगा। पर मैं आजकल के वकीलों की भाँति नहीं हूँ। मुझे तो सत्य का पता लगाना है। पर इसके पहले मैं तुम्हारे मस्तिष्क में ये बाते पैठा देना चाहता था (१) उसकी फुर्ती (२) आश्चर्यजनक तीखी आवाज़ (३) ऐसा स्वर जिसे सभी कुछ-कुछ पहिचानते हैं, पर उस भाषा के अर्थ नहीं समझते।"

इन शब्दों को सुनते ही मुझे अजित का कथन समझ में आने लगा। पर मैं अभी भी ठीक से सोच न पाता था कि मैं क्या सोचना चाह रहा था। खैर, मेरा मित्र कहता जा रहा था :

"तुम देखते हो", उसने कहा कि "मैंने भीतर जाने और बाहर आने की समस्या हल कर ली। अब कमरे के भीतर का हाल सोचो। दराज़ का सामान बिखरा हुआ था, यद्यपि बहुत सी वस्तुयें उसमें अभी भी थी।

इससे क्या निष्कर्ष निकलता है? हम कैसे कह सकते हैं कि दराज़ में जो कुछ पहले था, वही हत्या के पश्चात् भी नहीं था? श्रीमती खाउँराय और उनकी पुत्री बाहर अधिक नहीं आती-जाती थीं। जैसे कपड़े ऐसी स्त्रियों के पास होने चाहिये वे दराज़ में पाये गए। यह आवश्यक नहीं है कि कपड़े चुराने के लिए ही कोई आया हो। फिर यदि वह चोर था, तो रुपये और नोट क्यों नहीं ले गया। इस-लिए मैं तुमसे कहता हूँ कि हत्याओं का कारण जानने की चेष्टा न

करो (जैसा कि पुलिस करती है) । बैंकर से रुपया उठाने के तीन दिन के भीतर मृत्यु होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि रुपये के लिये मृत्यु हुई । पर ऐसी घटनाओं से पुलिस धोखे मे आ जाती है । हाँ, यदि रुपये चुराये गये होते, तो कदाचित् वैसा सोचना ठीक होता । कोई भी पुरुष यदि चोरी के इरादे से किसी के घर में घुसेगा तो, हत्या कर के रुपये न छोड़ जायगा, विशेष कर जब कि धन सामने ही रखा हो ।

"और बातों को ध्यान मे रखते हुए अब हमें हत्याओं की निर्दयता की ओर ध्यान देना चाहिए । एक स्त्री की पाशविक शक्ति से हत्या की गई है—फिर उसे हत्यारे ने चूल्हे में ठूँस दिया है । साधारण हत्यारे ऐसा नहीं करते । विशेष कर चूल्हे मे लाश को ठूँसना... मानवीय घटना नहीं प्रतीत होती, चाहे हम हत्यारे को अमानुषिक शक्ति का ही मान लें । तुम्हीं सोचो, हत्यारा कितना शक्तिमान रहा होगा कि वह लाश को चूल्हे के भीतर घुसेड़ सका, जब कि लाश को बाहर खींचने में कई पुरुषों को पूरा दम लगाना पड़ा ।

चय मिलता है। फिर जानते हो एक मोटी लट में कितने बाल होंगे ? कम से कम तीन-चार लाख ! फिर उस वृद्धा का सिर कटा ही नहीं था, धड़ से अलग कर दिया गया था केवल उस्तुरे से। इनके साथ ही शरीर पर कितने भयानक जख्म हैं। उनके विषय में कुछ इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि स्वयं डाक्टर ने कहा है कि हड्डियों का टूटना किसी बलशाली पुरुष द्वारा उन पर कुरसी जोरों से पटकने से ही सम्भव है।

"यदि इन सब बातों के साथ तुमने कमरे की तितरी-बितरी अवस्था पर ध्यान दिया है, तो तुम सोचोगे—फुर्ती, अमानुषिक शक्ति, नृशंसता, अकारण हत्या, एक आवाज़ जो कई प्रान्तों के आदमियों को विदेशी प्रतीत होती है, जिसे यद्यपि वे समझने में असमर्थ हैं, फिर भी कहते हैं कि कुछ पहिचानी-सी है। अब तुम क्या निष्कर्ष निकालते हो ? मैंने तुम्हारी विचार-शक्ति को जागरूक किया कि नहीं ?"

अजित के प्रश्न पूछते ही मैं सिहर उठा।

मैंने कहा—"हत्यारा पागल होगा। पागलखाने से छूटा कोई अधम।"

अजित ने कहा—"किसी हद तक तुम्हारा कथन ठीक है। पर पागलों की भाषा भी वैसी नहीं होती—तीखी किसी की समझ में न आने वाली। पागल भी तो आखिर किसी देश के होते हैं। यद्यपि उनके कथन अर्थहीन होते हैं तो भी शब्द तो समझे ही जा सकते हैं। इसके सिवा पागलों के बाल ऐसे नहीं होते जैसे इस समय मेरे हाथ में हैं। बालों के इस पतले गुच्छे को देखो। यह श्रीमती खाडेराव की मजबूती से बधी मुट्ठी में था। अवश्य ही वह उनकी हत्या करनेवाले के हैं।"

मैंने काँपते हुये कहा—"अजित, ये बाल ! ये बाल तो मनुष्य के नहीं हैं।"

"मैंने कब कहा कि ये मनुष्य के बाल हैं ?" अजित ने उत्तर

दिया।" अच्छा, इस कागज को देखो। इस पर मैंने गर्दन की शक्ल और उस पर नाखूनों और घावों के निशान बना रखे हैं।"

"तुम देखोगे", मेरे मित्र ने कागज को मेज पर फैलाते हुये कहा— "इस ड्राइंग से विदित होता है कि नाखून खिसके नहीं हैं। प्रत्येक अँगुली जहाँ रखी गई है, गड़ गई है। तुम उसी तरह, अँगुलियाँ रखने की चेष्टा करो।"

मैंने चेष्टा की पर व्यर्थ हुई।

"कदाचित हम ठीक कार्य नहीं कर रहे हैं। कागज एक समतल पर रखा है। गर्दन गोल होती है। यह एक लकड़ी का गोल टुकड़ा है। इस पर मैं कागज लपेट देता हूँ। अब चेष्टा करो।"

मैंने चेष्टा की, पर मैं पहले से भी अधिक असफल रहा।

कोई हाथ नहीं। क्योंकि मेरा विचार है कि औरंग-औटंग उससे छूट गया था। बंगाली उसके पीछे-पीछे आया होगा, पर ऐसी भयानक परिस्थिति में वह उसे हत्या करने से न रोक सका। औरंग-औटंग अभी भी छूटा हुआ है। मैं अब ज्यादा अपने विचारों को न दौड़ाऊँगा। क्योंकि यद्यपि मैं उन्हें भली भाँति समझता हूँ, पर कदाचित् तुम न समझ पाओ।

"अच्छा तो यदि यह बंगाली सचमुच निरपराध है, तो इस विज्ञापन से, जो कल रात को घर लौटते समय मैंने 'समुद्र पार' नामक पत्र में प्रकाशन के लिये दे दिया था, वह निश्चय ही आकर्षित होगा। 'समुद पार' समाचारपत्र को मल्लाह बहुत बड़ी संख्या में पढ़ते हैं, और यदि मेरा विचार ठीक है तो वह बंगाली यहाँ आयगा।"

उसने मुझे वह अखबार दिया। मैंने पढ़ा—"पकड़ा गया, टालीगंज में, प्रातःकाल तारीख...(हत्या के प्रातःकाल) एक बहुत बड़ा भूरे रंग का बोर्नियो द्वीप का औरंग-औटंग। उसका मालिक (जो पता लगाने से ज्ञात हुआ है एक माल्टीज़ जहाज पर मल्लाह है) इस वनमानुष को ले सकता है यदि वह इसको ठीक से पहिचान कर इसके पकड़ने और रखने का खर्च दे। वह शीघ्र ही निम्नलिखित पते पर आवे—।"

मैंने पूछा—"तुम्हें यह कैसे पता चला कि वह मल्लाह है और एक माल्टीज़ जहाज़ पर काम करता है?"

"मैं इसे केवल जानता ही नहीं", अजित ने कहा—"मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है। ऐसा रंगीन तेल लगा रिबन का टुकड़ा मल्लाह ही अपने लंबे बालों में बाँधते हैं, इसमें जैसी गाँठ पड़ी है वह माल्टीज़ जहाज़ों के ही मल्लाह जानते हैं। मैंने वह रिबन उस 'बिजली के खम्भे' के पास पड़ा पाया। यह मृतकों में से किसी का हो नहीं सकता। यदि मैं इस रिबन के बारे में गलती ही कर गया हूँ, तो भी

इससे इसके असली मालिक के यहाँ आने में कोई गड़बड़ी न होगी। पर यदि यह ठीक है, तो यहाँ आने के बारे में वह इस प्रकार सोचेगा :—
'मैं निर्दोष हूँ, मैं गरीब हूँ, मेरा औरंग ओटांग बहुमूल्य है। मेरी श्रेणी के मनुष्य के लिये उसका हाथ से निकल जाना एक बड़ी हानि है। फिर उसको लेने के लिये जाने में मैं डरूँ ही क्यों? वह हत्याकांड के स्थान से बहुत दूर पाया गया। कोई सन्देह ही कैसे कर सकेगा कि हत्या के लिये वही जिम्मेदार है। पुलिसवाले तो अब तक कोई सूत्र ढूंढ ही नहीं पाये हैं। यदि वे उस जीव को हत्या के लिये जिम्मेदार साबित भी कर दें, तो इससे मुझ पर क्यों दोष आने लगा। फिर मुझे कोई जान गया है। विज्ञापक कह रहा है कि मैं ही उस जानवर का मालिक हूँ। मैं नहीं जानता कि वह मेरे विषय में कितना जानता है। यदि मैं इतनी कीमती वस्तु को लेने के लिये आगे न बढ़ूँगा तो मुझ पर नहीं तो जीव पर तो पुलिस को शक हो ही जायगा। तब वे मुझ पर भी सन्देह कर सकते हैं। नहीं, मैं ऐसा नहीं होने देना चाहता। मैं इस विज्ञापन का उत्तर दूँगा, औरंग-ओटंग को छिपा रखूँगा, जब तक कि मामला समाप्त न हो जाय।"

से उसका आधा चेहरा ढका था। उसके हाथ में एक मोटा डंडा था। इसके सिवा उसके पास कोई हथियार न था। उसने हमें नमस्कार किया और फिर चुपचाप खड़ा हो गया।

"बैठ जाओ, भाई!" अजित ने कहा, "तुम औरंग-ओटंग के लिये आये होगे। काश, मैं ही उसका मालिक होता, बड़ा कीमती जानवर है। उसकी उम्र क्या होगी, बता सकते हो?"

मल्लाह ने लम्बी साँस ली, जैसे उसके हृदय से कोई भारी बोझ हट गया हो। उसने कहा—"मैं क्या जानूँ—पर वह चार पाँच साल से ज्यादा का न होगा। क्या वह इसी घर में है?"

"अरे नहीं, हम उसे यहाँ कैसे रख सकते थे। वह मेरे एक मित्र के मोटरखाने में बन्द है। कल प्रातःकाल तुम उसे पा सकते हो। तुम उसे पहिचान लोगे?"

"निस्सन्देह महाशय!"

"मुझे उससे बिछुड़ते हुये शोक होगा।" अजित ने कहा।

उसने कहा—"मेरे कहने के यह अर्थ नहीं कि आप अपने कष्ट का कोई मूल्य ही न रखें। आप जितना चाहें, मैं देने को तैयार हूँ—जितना भी मुझ-सा गरीब आपको दे सकता है।"

"ठीक," मेरे मित्र ने उत्तर दिया, "तुम ठीक ही कह रहे हो। मुझे सोचने दो!—मुझे क्या चाहिये। अच्छा, मैं तुम्हें बताता हूँ। मेरा पुरस्कार यह होगा कि तुम श्रीमती ल्यॉंडेराव और उनकी कन्या के विषय में जो कुछ जानते हो मुझे बताओ।"

अजित ने ये शब्द धीरे से कहे। और उसी भांति धीरे से जाकर दरवाज़ा बन्द कर भीतर से ताला लगा दिया। यह देखते ही मल्लाह का चेहरा सफेद हो गया। वह उठ खड़ा हुआ। उसने ज़ोर से लाठी पकड़ी, पर दूसरे ही क्षण वह काँपता हुआ बैठ गया। ऐसा प्रतीत होता था कि मूर्तिमान मृत्यु उसके सम्मुख आ गई थी। मुझे उस पर बड़ी दया आई।

लिये, मुँह मे साबुन का फेन लगाये दाढी बनाने की चेष्टा कर रहा था। वनमानुष ने उसे कई बार दाढी बनाते देखा था। वह उसी की नकल कर रहा था। ऐसे नृशंस जीव के हाथ मे ऐसा भयंकर हथियार देख कर उसके होश-हवास गुम हो गये। पर वह उस जीव को काबू में करना जानता था। उसने कमरे के कोने से एक कोडा उठाया।

कोड़ा देखते ही ओरंग-ओटरंग खुले दरवाज़े से भागा और सीढियों से उतरता हुआ एक खिडकी से कूद कर बाहर निकल गया। मल्लाह ने उसका पीछा किया। वनमानुष हाथ में उस्तुरा लिये था और बीच-बीच मे पीछे घूम कर अपना पीछा करनेवाले को देखता जाता था। एक बार तो वह बिलकुल पकडा जाते-जाते बचा। उस समय सडकों पर पूर्ण निस्तब्धता थी, क्योंकि रात्रि के तीन बजे थे। श्रीमती खाँडेराव की तीसरी मंज़िल पर रोशनी देख कर ओरंग-ओटरंग तेज़ी से बिजली के खम्भे पर चढ गया और फुर्ती से खिडकी का शटर पकड लिया। फिर वहाँ से वह कमरे में कूद गया। यह सब आधे मिनट में ही हो गया। शटर खुला रह गया था।

मल्लाह को अब प्रसन्नता हुई और कुछ चिन्ता भी। अब वह उस वनमानुष को आसानी से पकड सकता था, क्योंकि थोडी देर में ही वह उसी खम्भे से नीचे उतरेगा यह वह जानता था।

पर घर में वह कहीं कुछ कर न डाले, इस विचार के आते ही मल्लाह स्वयं खम्भे पर चढ गया। पर ऊपर आने पर वह कुछ न कर सका। वह साढे पाँच फुट की दूरी तक कूदने का साहस न कर सका। पर वह खिडकी के भीतर से कमरे का हाल देख सकता था।

पहले ही दृश्य ने उसका हृदय दहला दिया। श्रीमती खाँडेराव और उनकी पुत्री कमरे के बीच में बैठी लोहे के सेफ में कुछ कागज रख रही थीं! उस वनमानुष ने श्रीमती खाँडेराव के बाल पकड लिये और उनके मुख के चारों ओर उस्तुरा घुमाने लगा। कुमारी खाँडेराव

सजा हीन ही गई । श्रीमती लाडेराव चीखीं-चिल्लाईं, इससे वनमानुष का क्रोध बढ़ा और एक ही वार से उसने उनका सिर धड़ से अलग कर दिया ।

रक्त देख कर वनमानुष की पिपासा बढ़ गई । उसने कुमारी लाडि-सार के गले में अपने नाखून चुभा दिये और उस दशा में उसकी मृत्यु हो गई । इस के बाद वह कमरे में मस्त होकर घूमने लगा कि खिड़की के भीतर से उसकी दृष्टि अपने मालिक पर पड़ी । वह भयभीत हो गया । कदाचित् उसे कोड़े का ख्याल आया । उसने सोचा कि उसने दण्ड का कार्य किया है, इसलिये वह अपने काले कारनामों को छिपाने की चेष्टा करने लगा । फिर उसने जो कुछ किया वह सभी को मालूम है । भयभीत मल्लाह के मुँह से बरबस कुछ शब्द निकले, और वनमानुष ने भी अपनी विचित्र भाषा में कुछ कहा । भय से काँप कर भागता हुआ मल्लाह नीचे उतरा और घर भाग गया । अन्त में वह बोला—'अब मुझे इस विषय में अधिक नहीं कहना है । दरवाजे के खोले जाने से पूर्व ही ओरंग ओटांग उसी रास्ते से नीचे उतर भाग गया होगा ।"

पत्र की चोरी

कलकत्ता नगर। संध्या का समय। मै अपने मित्र अजय से वार्त्तालाप कर रहा था। वार्त्तालाप का विषय अमानुषिक हत्याये और तत्सम्बन्धी उद्घाटन थे। तभी कलकत्ते के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने हमारे कमरे मे प्रवेश किया। सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर जितेन्द्र से हमारी पुरानी जान-पहिचान थी।

खूब ज़ोरों की वन्दगी हुई। सच पूछो तो मुझे जितेन्द्र से बहुत लगाव न था। वह जरा झक्की किस्म का आदमी था, फिर अपने को समझता भी बहुत था। हम लोग अँधेरे में ही बैठे हुये थे। अब अजय लैम्प जलाने के लिये उठा। जितेन्द्र ने हमें सूचित किया कि वह एक बहुत ज़रूरी काम मे हमारी मदद लेने आया था। अजय बिना लैम्प जलाये ही बैठ गया। उसने कहा—"यदि ऐसा ज़रूरी मसला ही पेश है, तो हम अँधेरे में ही उसे हल करने की कोशिश करेंगे। अँधेरा ही इसके लिये अधिक मौजूँ होगा।"

"यह भी तुम्हारे अजीब ख्यालों में से एक है," सुपरिण्टेण्डेण्ट बोला। जो कुछ भी वह न समझ पाता था, उसे ही वह अजीब कह बैठता था। ऐसी ही कुछ उसकी आदत पड़ गई थी। इस प्रकार वह अजीबोगरीब विचारों में सदा घिरा रहता था।

"सच है," अजय ने आगंतुक की ओर एक सिगार बढ़ाते हुए कहा। बैठने के लिये उसने एक आरामकुरसी की ओर उसे सकेत भी किया।

"हाँ तो बताइये, क्या गड़बड़ी है?" मैंने पूछा—"कोई खून तो नहीं हो गया?"

सजा हीन "ओह, नहीं, खून खराबी नहीं हुई है। सच तो यह है कि मामला बा बिल्कुल साधारण है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम स्वयं इसे सुविधा पूर्वक कर सकते हैं। फिर भी मैंने सोचा कि अजय की राय लेता चलूँ, क्योंकि सहज होते हुये भी मामला बड़ा अजीब है।"

"सहज और अजीब!" अजय ने कहा।

"हाँ, एकदम ऐसा सहज भी नहीं कह सकते। हम लोगों को इसी से तो उलझन हुई है कि मामला इतना सहज होते हुये भी सुलझ नहीं रहा है।"

"कदाचित् इस विषय की सरलता ही इसे इतना कठिन बना रही है," अजय ने कहा, "जिससे आप लोगों को मुश्किल पड़ गई है।"

"क्या वाहियात बात करते हो।" सुपरिन्टेन्डेन्ट बोला और वह ठहाका मार कर हँसा।

"कदाचित रहस्य आवश्यकता से अधिक सहज है," अजय ने कहा।

"ओहो, हो! क्या खूब सोचा है!"

"अत्यन्त सहज।"

धोना पडेगा, यदि...को इसकी भनक भी लग जाय कि मैंने इसे किसी को बताया है।"

"कहिये," मैंने कहा।

"न मन हो तो न कहिये," अजय ने टोका।

"तो मैं आप लोगों को बताता हूं। मुझे बहुत ही विश्वस्त सूत्र से समाचार मिला है कि सन्तोषगढ की महारानी का एक गुप्त पत्र चोरी गया है। जिसने उसे लिया है वह वैसा करते देखा गया है और उसके पास अभी भी वह पत्र है।"

"यह आप कैसे जानते हैं?" अजय ने पूछा।

"अजय, यह तो सहज ही निष्कर्ष निकल आता है," अफसर ने कहा, "यदि चुरानेवाले के हाथ से वह निकल गया होता, तो उसका कटु फल भी महारानी को...। अब तक पता चल गया होता।"

"जरा साफ साफ कहने की चेष्टा कीजिये," मैंने कहा।

"मैं तो बस, इतना कह सकता हूँ कि उस परचे के किसीके हाथ में पडने के मानी यह हैं कि वह रानी से जो चाहे करा सकता है।" सुपरिण्टेण्डेण्ट को बातें घुमा-फिरा कर कहने में बड़ा मजा आता था।

"फिर भी मैं ठीक से नहीं समझा," अजय ने कहा।

"एँ? मैंने आपको बताया न कि उस पत्र के एक तीसरे व्यक्ति के हाथ मे पडने का अर्थ यह है कि महारानी की शान्ति में विघ्न पडेगा, क्योंकि उस पत्र के आशय से उनके व्यक्तित्व को धक्का पहुँचता है।"

"पर ऐसा तो तभी होगा," मैंने बीच में पड़ कर कहा, "जब कि खोने वाला यह जान जाय कि अमुक के पास वह पत्र है। कौन साहस करेगा—"

"चोर" जितेन्द्र ने कहा, "सन्तोषगढ का एक मन्त्री है। वह इतनी नीच प्रकृति का है कि उनके लिये कुछ असम्भव नहीं। चोरी करने का

तरीका जितना साहसपूर्ण था, उतना ही कुशलतापूर्ण भी। पत्र तब चुराया गया था, जब रानी अपने कमरे में अकेली थीं और जिससे पत्र छिपाना उन्हें अभीष्ट था, वह व्यक्ति स्वयं उस कमरे में उस समय आ गया था। शीघ्रता में उसे न छिपा सकने के कारण रानी ने पत्र को वैसा खुला हुआ ही मेज़ पर रख दिया था। पता ऊपर दिखाई पड़ता था, आशय तब भी छिपा हुआ था। इस प्रकार पत्र पर आगन्तुक का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था। ठीक इसी बीच मंत्री देवेन्द्र का वहाँ आगमन हुआ। उसकी गिद्ध की आँखों ने उसी समय पतावाले को पहिचान लिया और फिर महारानी की उलझन देख कर समझ लिया कि मामला क्या है। कुछ इधर उधर की काम काज की बातें कर उसने बिना किसी प्रकार की असाधारणता प्रदर्शित किये अपनी जेब से उसी प्रकार का पत्र निकाला, जैसा वहाँ मेज पर पड़ा था और उसे पढ़ने का उपक्रम करने लगा। और फिर बड़ी सफ़ाई से उसने अपना पत्र मेज पर उस पत्र के पास रख दिया। फिर वह पन्द्रह मिनट तक काम काज की बातें करता रहा। अन्त में जाते समय उसने असली पत्र उठा कर जेब में डाल लिया। पत्र की असली स्वामिनी ने यह देखा अवश्य, पर तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति में वह ध्यान न दिला सकीं और उसके देखते-देखते मंत्री अपना पत्र, जिसका कोई मूल्य न था—वहीं छोड़

पत्र को मंत्री से ले लिया जाय। खुल्लम-खुल्ला ऐसा किया ही नहीं जा सकता। इसीलिये अत्यन्त व्यथित होकर उसने यह मामला मेरे सिपुर्द कर दिया है।"

"आपसे अधिक," अजय ने मुँह से धुँये के गोले निकालते हुये कहा, "कोई दूसरा इस कार्य के उपयुक्त हो भी नहीं सकता, इसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती।"

"आप मेरी शक्ति की व्यर्थ प्रशंसा कर रहे हैं," अफसर ने कहा, "यद्यपि यह कि आपका कथन मिथ्या है, यह मैं नहीं कह सकता।"

"तो इतना तो विदित ही है," मैंने कहा, "आपने कहा है कि पत्र अभी भी मंत्री के कब्जे में है और उस पत्र का रखना ही उसे शक्ति देता है, पत्र का काम में लाना नहीं। क्योंकि एक बार पत्र को काम में लाते ही कम से कम मन्त्री के हाथ से तो शक्ति निकल ही जायगी।"

"ठीक है," जितेन्द्र ने कहा, "इसी को आधार मान कर मैंने अपना कार्य आरम्भ किया। उसकी जानकारी के बिना उसके निवास-स्थान की मुझे तलाशी लेनी थी। कुछ सहज कार्य न था, इसके सिवा मंत्री को मेरे इरादे का पता भी न चलना चाहिये था।"

"पर," मैंने कहा, "आप तो ऐसी छान-बीन में पटु होंगे। कलकत्ता की पुलिस ऐसा कितनी ही बार कर चुकी होगी।"

"आह, हाँ; और इसीलिये मुझे इससे कोई विशेष उलझन न हुई। मंत्री की आदतों से मुझे बड़ा लाभ हुआ। वह बहुधा रात भर अपने निवास-स्थान से गायब रहता है।

"उसके नौकर भी बेशुमार नहीं हैं, और वे उसके कमरे से काफी दूरी पर दूसरे कमरों में सोते हैं। फिर वे उड़िये हैं और सदा सहज ही उन्हें ताड़ी पिला कर मस्त किया जा सकता है। आप लोग जानते ही हैं कि मेरे पास ऐसी तालियाँ हैं, जिनसे कलकत्ता शहर का कोई भी

ताला खुल सकता है। तीन महीनों से ऐसी एक रात्रि न गुजरी होगी, जब मैंने स्वयं मंत्री के कमरे की तलाशी न ली हो। मेरी आन का सवाल है और फिर, मैं एक दूसरा भेद बता रहा हूँ, पुरस्कार भी कम नहीं है। इसलिये तब तक मैंने खोज समाप्त नहीं की, जब तक मुझे पूर्ण रूप से विश्वास नहीं हो गया कि चोर मुझसे अधिक चालाक है। मेरे विचार से मैंने उसके घर का कोना-कोना, जिसमें पत्र छिपाया जा सकता था, ढूँढ डाला है।"

"पर क्या यह सम्भव नहीं," मैंने कहा, "कि यह मानते हुये भी कि पत्र मंत्री के पास ही है, उसने उसे अपने घर से कहीं बाहर छिपा रखा हो?"

"इसकी सम्भावना कम है।" [illegible] ने कहा—"तुम सतोपगढ़ रियासत की बात नहीं जानते। आजकल वहाँ पर ऐसी चालें चली जा रही हैं, उनको देखते हुए मन्त्री किसी दूसरे पर ऐसी बातों में विश्वास नहीं कर सकता, क्योंकि वह जानता है कि जिस फंदे में महारानी फँसी है उस फंदे को सदा कसा रखने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह पत्र को किसी समय भी, क्षण भर में, उपस्थित कर सके।"

अजय ने कहा—"देवेन्द्र, जहाँ तक मैं सोचता हूँ, ऐसा मूर्ख नहीं है कि ऐसी सभावनाओ से परिचित न हो। ऐसी तलाशियों के लिये वह सदा तैयार रहता होगा।"

"नहीं, वह मूर्ख तो नहीं है," जितेन्द्र ने कहा, "पर वह कविता करता है और कवि और मूर्ख मे मैं भाईचारा तो अवश्य समझता हूँ।"

"ठीक है," अजय ने सिगरेट का ज़ोर का कश खींचते हुये कहा, "यद्यपि कभी-कभी मुझे भी कविता करने का खब्त हुआ है।"

"अच्छा," मैने पुलिस-अफसर से कहा, "आप कृपया अपनी खोज का पूर्ण विवरण हमे सुना दीजिये।"

"हाँ, सच तो यह है कि कमरे की खोज मे हमने बहुत समय व्यय किया और कोना कोना ढूँढ डाला। ऐसी खोजों का मुझे काफी अनुभव है। मकान का एक एक कमरा खूब होशियारी से छान डाला गया। प्रत्येक कमरे की तलाशी मे मैं पूरा सप्ताह देता था। सबसे पहले हम कमरे के फर्नीचर की तलाशी लेते थे। प्रत्येक दराज़ को खोल कर देख लेते थे और यह तो आप मानेंगे कि एक कुशल पुलिस-अफसर के लिये किसी दराज का गुप्त रह जाना सभव नहीं। विशेष कर ऐसी तलाशियों मे तो हमसे कोई गुप्त दराज़ नहीं छूट सकती। इस विषय मे हमारे नियम अकाट्य हैं। एक लाइन का पचासवां हिस्सा भी हमारी खोज से नहीं छूट सकता। आलमारियों के पश्चात् कुरसियों का नम्बर आया। लम्बी-पतली सुइयों से प्रत्येक गद्दे की हमने छान-बीन की। मेज़ों पर से हमने उनके ऊपर के तख्ते उखाड़ लिये।"

"ऐसा क्यों?"

"कभी-कभी लोग ऊपर के तख्ते उखाड़ लेते हैं और फिर किसी छेद मे पत्रादि ऐसी वस्तुयें रख कर तख्ते जड़ देते हैं। उसके भारी पलग की भी इसी प्रकार हमने तलाशी ली।"

"पर क्या किसी शब्द विशेष से आप ऐसे छिद्रों का अनुमान नहीं लगा सकते? ठकठकाने से तो इनका पता चल सकता है।"

"नहीं, जब इन छिद्रों में कोई वस्तु रख कर उसमें रुई ठूँस दी जाती है, तो फिर खटखटाने में कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, और फिर हम यह देखना था कि हमारे कानों में किसी प्रकार की आवाज़ तो नहीं होता।"

"आप घरों के आस-पास की भूमि के विषय मे भी कह रहे हैं ?"

"सारी भूमि पर ईंटे जडी हैं। इससे हमें अधिक कष्ट न हुआ। ईंटो के बीच के मसाले की अवश्य हमें परीक्षा करनी पडी, पर उसे किसी ने छुआ तक न था।"

"आपने देवेन्द्र के कागज़ पत्रों की भी देख-भाल की होगी ? उसके पुस्तकालय की पुस्तकों को भी न छोडा होगा ?"

"अवश्य ! हम लोगों ने प्रत्येक बडल खोल डाला, न केवल ऐसे ही झाड़ कर प्रत्येक पुस्तक देखी, बल्कि उसका प्रत्येक पृष्ठ उलट कर देखा। हमने प्रत्येक पुस्तक की जिल्द की पूरी तौर से देखभाल की—सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता से। यदि किसी जिल्द मे कुछ गडबड़ी भी की गई होती, तो वह सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से नहीं छिप सकती थी। पाँच या छः पुस्तकों की नई जिल्द बनी थी, उनको हमने पतली सुइयों से खोद-खोद कर देखा।"

"आपने दरियों के नीचे फर्श की भी परीक्षा की ?"

"निस्सदेह ! हम लोगों ने प्रत्येक दरी हटा कर भूमि की सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से परीक्षा की।"

"और दीवारों की ?"

"उन्हे भी हमने नहीं छोडा।"

"तहखाने भी देखे ?"

"हाँ।"

"तो," मैंने कहा, "आपका अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता। पत्र घर में नहीं है।"

"मेरा भी अब यही विचार हो रहा है," अफसर ने कहा—"और अब अजय, तुम मुझे क्या सलाह देते हो ?"

"इस इमारत की फिर से पूरी तलाशी ली जाने।"

"व्यर्थ है," जितेन्द्र ने कहा—"जितना विश्वास मुझे इस समय

"क्यों ?" अजय ने सिगरेट का कश खींचते हुये कहा—"मैं सचमुच—सोचता हूँ सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब, कि आपने अभी इस मामले में पूरी कोशिश नहीं की है। आप थोड़ा सा परिश्रम अभी और कर सकते हैं, क्यों ?"

"कैसे और किस प्रकार ?"

"ऐसे कि आप दूसरों की सलाह ले सकते हैं। अच्छा, यह तो बताइये, आपने गणेशदत्त की कथा सुनी है।"

"गणेशदत्त को गोली मारो !"

"अवश्य ! आप चाहें, तो उसे फाँसी पर लटका दीजिये, इसमें मुझे कोई आनाकानी न होगी। पर किसी समय में एक धनी कजूस ने गणेशदत्त से डाक्टरी सलाह लेने का निश्चय किया। बातों ही बातों में एक दिन उसने गणेशदत्त के सम्मुख एक काल्पनिक व्यक्ति के रोग का वर्णन कर अपने रोग के विषय में जानना चाहा।"

" 'यदि हम मान लें,' कजूस ने कहा, 'कि उस रोग के लक्षण ये हैं, तो डाक्टर साहब, आप रोगी को क्या दवा लेने को बताते ?' "

" 'लेने को ?' गणेशदत्त ने कहा—'क्यों, मैं सलाह लेने को बताता।' "

"पर," अफसर ने ज़रा झुँझला कर कहा—"मैं सलाह लेने के लिये पूरी तौर से तैयार हूँ, और सलाह के लिये पचास हजार रुपये व्यय करने के लिये भी तैयार हूँ।"

"यदि ऐसी बात है," अजय ने एक दराज खोल कर उसमें से चेकबुक निकालते हुये, कहा—"तो कृपया आप इतने रुपयों का एक चेक काट दीजिये। आपके इतना करते ही मैं आपको पत्र दे दूँगा।"

मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। पुलिस अफसर को तो जैसे बिजली ने चौंधिया दिया। कुछ मिनटों तक वह मेरे मित्र की ओर देखता हुआ, मुँह बाये बैठा रहा। उसकी आँखें निकली आ रही थीं। उसे विश्वास

ही नहीं हो रहा था; पर जब उसने होश सँभाला तो क़लम लेकर पचास हज़ार रुपये का चेक बना दिया। चेक लिखते समय बीच-बीच में वह आकाश की ओर भी देखने लगता था। चेक भर कर उसने अजय को दे दिया। अजय ने भली भाँति उसे परख कर अपने बेग के हवाले किया। फिर उसने एक तिजोरी से पत्र निकाल कर पुलिस-अफ़सर को दिया। सुपरिंटेंडेंट को पत्र पाते ही वर्णनातीत आनन्द हुआ। काँपते हुये हाथों से उसने उसे खोला और उसको शीघ्रतापूर्वक पढ़ गया। फिर वह द्वार की ओर भागा, और एक झटके से द्वार खोल कर कमरे और घर से बाहर चला गया। जब से अजय ने उसे चेक भरने को कहा था, उसके मुख से एक शब्द भी न निकला था।

जब वह चला गया, तो मेरे मित्र ने मेरी शंकाओं का समाधान

इस पुरुष—मेरा तात्पर्य मन्त्री से है—के विषय में लागू न होते थे। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के लिये तो खोज का एक ही सीधा और सच्चा उपाय है, और चाहे जैसा केस आये, वह सब को उसी ढंग से निपटाना चाहता है। पर वह अधिकांशतः मामले में या तो कम पैठता है या आवश्यकता से अधिक चेष्टा करता है। सच पूछो तो ऐसे मौकों पर एक स्कूल का विद्यार्थी भी उसकी भूल सुझा सकता है। मेरा विचार है कि एक ऐसे ही लड़के ने 'जूस और ताक' के खेल में जूस या ताक ठीक-ठीक बता देने में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। एक खिलाड़ी अपने हाथ में कुछ बीज ले लेता है; दूसरे खिलाड़ी को बताना होता है कि जितने बीज हैं, वे जूस हैं अर्थात् दो से विभक्त होने वाले हैं अथवा ताक हैं। यदि अंदाज़ ठीक निकलता है, तो जीतने वाले को एक बीज मिल जाता है, यदि गलत होता है, तो उसे एक बीज से हाथ धोना पड़ता है।

"जिस बालक की मैं चर्चा कर रहा हूँ, उसने स्कूल की सारी गोलियाँ इसी प्रकार जीत लीं। उसकी सफलता का रहस्य क्या था, उसे अपने प्रतिपक्षियों की समझ का ठीक-ठीक अंदाज लगाना था। मान लीजिये, एक साधारण खिलाड़ी उसके सम्मुख है, जो अपनी मुट्ठी ऊँची कर पूछता है, 'कहो, जूस या ताक?' हमारा बालक कहता है, 'ताक' और हारता है, पर दूसरी बार वह जीत जाता है, क्योंकि भोला खिलाड़ी सोचता है कि पहली बार उसने जूस रखा था, तो इस बार बदल कर ताक रखना चाहिये। उसकी समझ की परिधि ही इतनी है। यही हमारा बालक जानता है और इसलिये इस बार वह ताक कहता है और जीतता है। पर यदि उसका पाला ज़रा चालाक लड़के से पड़ा है, तो वह यों सोचेगा कि पहली बार उसने जूस रखा था, तो यह इस बार ताक रखना चाहेगा, जैसा पहले लड़के ने चाहा था, पर चूँकि वह ज़रा चालाक है, इसलिये इसका मन फिर भी जूस ही रखने को करेगा।

लोभ होता है, तो वे अपने अनवीक्षण के ढग को तीक्ष्ण कर देते हैं। वे कभी सिद्धांत की दृष्टि से ऐसे रहस्यों का उद्घाटन करने की चेष्टा नहीं करते। इस मन्त्री के मामले में भी पुराने रगडे को ही दुहराया गया। सूक्ष्म-दर्शक यंत्र की सहायता से देखना, सुइयों से कोंच कर पता लगाना आदि ढग बहुत पुरातन है। क्या तुम नहीं देखते कि उसके विचार से सभी पुरुप किसी न किसी छिद्र मे पत्र छिपाते हैं? और क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि साधारण कार्यों के लिये साधारण पुरुषों द्वारा ही ऐसे उपाय काम में लाये जाते हैं? ऐसी वस्तुओं की खोज भी हो जाती है, क्योंकि इनके साथ पुरस्कार का लोभ रहता है और पुरस्कार के साथ परिश्रम और समय का भी प्रबन्ध हो जाता है। फिर पुरस्कार से उत्साहित होकर खोज करनेवाले ऐसा करने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं।

"हाँ, तो मेरे कथन का अर्थ तुम समझ गये न? यदि वह पत्र पुलिस-अफसर की खोज की परिधि के भीतर होता, तो उसे वह अवश्य मिल जाता। पर ऐसा न होने का कारण केवल यही है कि अफसर ने *मन्त्री को मूर्ख समझा, क्योंकि मन्त्री कवि है। सभी मूर्ख, कवि हैं;* ऐसा अफसर समझता है और इससे वह भ्रमपूर्ण निष्कर्ष निकालता है कि सभी कवि मूर्ख हैं।"

इसलिये हमारा बालक कहता है—जूझ, और जीतता है। स्कूल के इस विद्यार्थी को लोगों ने भाग्यवान् नाम दिया था, पर तुम्हीं बताओ, इसमें भाग्य की कहाँ तक दौड़ थी?"

"आप ठीक कहते हैं," मैंने कहा—"यह तो प्रतिपक्षी की बुद्धि से लोहा लेना था।"

"हूँ," अजय ने कहा—'और इस लड़के से उसकी सफलता का रहस्य पूछने पर मुझे यह उत्तर मिला—'पहले मैं यह देखता हूँ कि मेरा प्रतिपक्षी कितना मूर्ख अथवा चालाक है, कितना अच्छा या बुरा है, और मैं उस ढंग उसी की भाँति अपने मुख का भाव बनाने की चेष्टा करता हूँ, और तब यह जानना चाहता हूँ कि मेरे मन में क्या भाव उठते हैं।' उस स्कूल के बालक की यह बात कितनी समझदारी से भरी है।"

लोभ होता है, तो वे अपने अनवीक्षण के ढंग को तीक्ष्ण कर देते हैं। वे कभी सिद्धांत की दृष्टि से ऐसे रहस्यों का उद्‌घाटन करने की चेष्टा नहीं करते। इस मंत्री के मामले में भी पुराने रगड़े को ही दुहराया गया। सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र की सहायता से देखना, सुइयों से कोंच कर पता लगाना आदि ढंग बहुत पुरातन है। क्या तुम नहीं देखते कि उसके विचार से सभी पुरुष किसी न किसी छिद्र में पत्र छिपाते हैं? और क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि साधारण कार्यों के लिये साधारण पुरुषों द्वारा ही ऐसे उपाय काम में लाये जाते हैं? ऐसी वस्तुओं की खोज भी हो जाती है, क्योंकि इनके साथ पुरस्कार का लोभ रहता है और पुरस्कार के साथ परिश्रम और समय का भी प्रबन्ध हो जाता है। फिर पुरस्कार से उत्साहित होकर खोज करनेवाले ऐसा करने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं।

"हाँ, तो मेरे कथन का अर्थ तुम समझ गये न? यदि वह पत्र पुलिस-अफसर की खोज की परिधि के भीतर होता, तो उसे वह अवश्य मिल जाता। पर ऐसा न होने का कारण केवल यही है कि अफसर ने मंत्री को मूर्ख समझा, क्योंकि मंत्री कवि है। सभी मूर्ख, कवि हैं, ऐसा अफसर समझता है और इससे वह भ्रमपूर्ण निष्कर्ष निकालता है कि सभी कवि मूर्ख हैं।"

"पर क्या वह सचमुच कवि है?"—मैंने पूछा। "वे दो भाई हैं, मैं जानता हूँ और साहित्य में दोनों ने सफलता प्राप्त की है। पर मंत्री ने तो, मेरा विचार है, गणित पर एक विद्वत्तापूर्ण पुस्तक भी लिखी है वह कवि नहीं, गणितज्ञ है।"

"तुम भूल कर रहे हो मैं उसे भली भाँति जानता हूँ, वह दोनों है कवि और गणितज्ञ होने के नाते उसकी समीक्षा-शक्ति दृढ़ होगी, केवल गणितज्ञ उसको इस कला में इतना निपुण न बना पाता और व पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट से पछाड़ खा जाता।"

"मुझे तुम्हारी बातों से कौतूहल हो रहा है।"—मैंने कहा, "तुम ऐसी बातें कह रहे हो जिसे सारा संसार असत्य कहता है। शताब्दियों से प्रचलित विश्वासों की तुम क्षण भर में ही धज्जी-धज्जी उड़ा देना चाहते हो। समीक्षा शक्ति के लिये गणित ही सर्वोत्तम करार दिया गया है।"

"तुम्हारा कहना ठीक है"—अजय ने कहा, "गणितज्ञों ने स्वयं इस गलतफहमी को फैलाने में योग दिया है। पर यदि एक असत्य को सत्य समझें, तो क्या यह उनकी भूल नहीं है?"

"कहते जाइये।"

"जिस समीक्षा शक्ति की [illegible] गणित द्वारा बढ़ाने की चेष्टा की जाती है, उसमें मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं। गणित एकदम अप्राकृतिक सिद्धान्तों को लेकर चलता है और इस प्रकार वह व्यावहारिक नहीं है।

ही इस बात का विश्वास हो जाय कि पत्र उस घर मे नहीं है। और सच पूछो तो उसका यह प्रयत्न सफल भी हुआ। फिर मन्त्री चतुर है, और पुलिस अफसर. कम से कम अफसर तो कम अक्लमन्द है ही। इसलिये मैंने सोचा कि मन्त्री ने स्वय को अफसर के स्थान पर रख कर अवश्य सोच लिया होगा कि वह क्या करेगा। इसीलिये मन्त्री पत्र को छिपाने के लिये साधारण स्थानो का आश्रय न लेगा, यह मैं जानता था। जिन बातों को तुम्हे समझाने मे मुझे इतनी कठिनाई हुई है; उन बातों को मन्त्री ने अवश्य सोचा होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास था। इसलिये यह स्पष्ट हो जाता है कि वह छिपाने के लिये साधारण स्थानों का आश्रय कभी न लेगा। क्या वह नहीं जानता था कि उसके मकान की तलाशी खुर्दबीन से ली जा सकती थी? भली भाँति सोच-विचार करने पर ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा। तो फिर वह सरलता की ओर झुका। तुम्हे स्मरण होगा कि पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ठहाका मार कर हँसा था, जब मैंने पहली मुलाकात में उससे कहा था कि वह पत्र प्राप्त करने मे इसलिये असफल हुआ था, क्योंकि समस्या उससे कहीं अधिक सरल थी—जितना उसने सोचा था।"

"हाँ," मैंने कहा "मुझे उसके हर्ष का स्मरण है। मुझे तो भय हुआ था कि कहीं वह पागल न हो जाय।"

"अच्छा, एक बात बताओ," अजय ने कहा—"तुम जानते हो सडक पर लगे कौन-से विज्ञापन सबसे अधिक आकर्षक होते हैं?"

"नहीं, मैंने कभी यह सोचने की चेष्टा नहीं की," मैंने उत्तर दिया।

"यह भी एक पहेली है," उसने कहा—"जो किसी नक़शे पर खेली जा सकती है। दूसरों के सामने एक बडा, उलझनवाला नक़शा रख दीजिये और उनसे आपने जो देश, सरिता या पर्वत का नाम सोच रखा है, उसे बूझने को कहिये। यदि आप नौसिखिया हैं तो आप

अवश्य किसी कोने में छोटे अक्षरों में छपा शब्द ढूँढ़ियेगा, पर आप जानते हैं, इस खेल के विद्वान् क्या करते हैं? वे नक्शे में खूब बड़े बड़े शब्दों में दूर दूर तक लिखा शब्द चुनते हैं। ये सड़कों पर बहुत बड़े पोस्टरों की भाँति साधारण पुरुषों की दृष्टि से बचे रहते हैं। कारण केवल यही है कि वे आवश्यकता से अधिक साफ साफ दिखाई पड़ते हैं, पर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट इस बात को नहीं समझ सका। उसने कभी यह न सोचा कि मन्त्री पत्र को संसार के लोगों के सम्मुख रख कर उसे संसार द्वारा देखे जाने से बचायेगा।

उसीके पास वह बैठा हुआ था और उस पर बहुत से पत्र और दूसरे कागजात तितर-बितर थे। बहुत तीक्ष्ण दृष्टि से देखने पर भी मैंने उसमें सन्देह उत्पन्न करने वाली कोई बात न देखी।

"अन्त में मेरे नेत्र कमरे का चक्कर लगाते हुये दीवारगीरी पर पहुँचे। वहाँ पर पुस्तकें रखने का एक 'रैक' रखा था। उसके एक खाने में पांच या छ: 'विज़िटिंग कार्ड' थे और केवल एक पत्र रखा था। पत्र बहुत तोडा-मरोडा गया था। बीच से दो भागो मे फटा भी प्रतीत होता था। ऐसा ज्ञात होता था, मन्त्री ने पहले उसे फाड कर फेंक देना चाहा होगा। उस पर एक बडी काली मुहर थी, जिस पर मन्त्री का नाम 'देवेन्द्र' बड़ा स्पष्ट था और छोटे स्त्रियोचित अक्षरों में स्वयं 'देवेन्द्र' का पता भी लिखा था। लापरवाही से, अथवा यों कहिये घृणापूर्वक वह रैक के ऊपर के खाने में ठूँस दिया गया था।

"इस पत्र पर दृष्टि पडते ही मै समझ गया कि मैं इसी की खोज में था। देखने मे तो, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने हम लोगों को पत्र का जो विवरण दिया था, उसमे और इसमें आकाश-पाताल का अन्तर था। यहाँ मुहर बड़ी और काली थी और उस पर देवेन्द्र—चिह्न था, और असली पत्र मे मुहर छोटी और लाल थी और उस पर सतोपगढ राज्य का चिन्ह था। यहाँ, मन्त्री को लिखा गया पता छोटा और जनाना था; वहाँ पता बडे और पुरुषोचित ढग पर लिखा गया था। आकृति दोनों पत्रों की एक ही थी। पर उन दोनों मे जो अन्तर था, उसकी अधिकता ही ने मुझे चौकन्ना कर दिया। मन्त्री पत्रादि को बडी सफाई से रखता था, फिर वह पत्र इतना तोड़ा-मरोडा कैसे गया? अवश्य ही दर्शक के मस्तिष्क में पत्र की अर्थहीनता बैठाने के लिये ही ऐसा किया गया होगा। इन बातों के सिवा यह भी ध्यान देने योग्य था कि पत्र ऐसे स्थान पर रखा गया, जहां लोगों की दृष्टि कभी भी पड सकती थी और इसलिये

जिन सिद्धांतों पर मैं अभी तक भाषण देता रहा हूँ, उन्हीं के अनुसार मैंने निश्चय किया कि रानी का पत्र वही था।

"मैं देर तक मंत्री से वार्तालाप करता रहा। विषय ऐसा था, जो मैं जानता था कि मंत्री को अत्यन्त प्रिय था और उसमें वह काफी उलझा रहा। उस मुलाकात में मैंने पत्र की आकृति को हृदयस्थ कर लिया। पत्र किस भाँति रैक में रखा गया था, इस पर ध्यान देना भी मैं न भूला। फिर एक छोटी सी बात मुझे और ज्ञात हुई, जिससे मेरा रहा सहा संदेह भी दूर हो गया। कागज़ के कोनों पर ध्यान देने से मुझे ज्ञात हुआ कि वे आवश्यकता से अधिक खुरदरे थे। जिस प्रकार कागज़ एक दिशा में मोड़े जाने के पश्चात् उलटी ओर मोड़ा जाने पर सिकुड़ जाता है, उसी प्रकार इस पत्र के कोने भी सिकुड़े प्रतीत हो रहे थे। इतनी खोज काफी थी। मैं समझ गया कि पत्र खोले जाने के पश्चात् उलट दिया गया था और फिर उस पर मुहर मार दी गई थी। मंत्री से विदा होते समय मैंने अपना सोने का पानी का डब्बा वहीं छोड़

बाद देवेन्द्र लौटा। अपना काम कर मैं भी उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया था। उसके बाद शीघ्र ही मैंने उससे विदा ली। बनावटी पागल ने मेरे आदेश से ही वैसा किया था।"

"पर असली पत्र के स्थान पर नकली पत्र रखने से तुम्हारा क्या प्रयोजन था? यदि तुम पहिली मुलाकात में उसके सामने ही पत्र लेकर चल देते, तो क्या ठीक न होता?"

"देवेन्द्र," अजय ने कहा, "बड़ा भयानक पुरुष है। वह कब क्या कर बैठे, कौन कह सकता है? उसके मकान में उसके कितने ही नौकर-चाकर भी हैं। जैसा तुम कह रहे हो, यदि मैंने वैसा करने का उपक्रम किया होता, तो मंत्री के सामने से मैं जीवित बच कर न आ पाता। कलकत्ते के लोगों ने फिर मेरा नाम ही न सुना होता; पर वैसा न करने मे मेरा एक और प्रयोजन था। तुम मेरे राजनैतिक विचारों से अवगत हो। इस मामले में मैंने एक स्त्री की लाज बचाई है। गत अठारह मासों से मन्त्री का उस पर दबाव था। अब पाँसा पलट गया है, मन्त्री अभी भी रानी पर वैसा ही अनुचित दबाव डालेगा, जिसका वह एक वर्ष से अधिक से आदी रहा है। पर इस प्रकार वह स्वयं अपने पतन का पथ तैयार करेगा। तुम जानते ही हो कि भाग्योदय होते समय जितना आनन्द होता है, उससे कहीं अधिक दु:ख पतन के समय होता है। मंत्री के भाग्य पर मुझे शोक नहीं है। उसने अपनी बुद्धि का भयानक दुरुपयोग किया है। जब रानी उसको उसके वर्त्तमान पद से हटाना चाहेगी, तो उसका मुख देखने योग्य होगा। पर यह तो बताओ, तुम कुछ अन्दाज़ा लगा सकते हो कि मैंने नकली पत्र में क्या लिखा है?"

"क्या, तुमने उसमे कोई विशेष बात लिखी है?"

"क्यों, पत्र मे कुछ न कुछ तो लिखना ही चाहिये था। उसे खाली छोड़ देना मन्त्री के प्रति अभद्रता होती और फिर जिस पुरुष ने उसकी सारी आकांक्षाओं को मिट्टी में मिला दिया था, उसका कुछ परिचय तो मुझे देना ही था।"

मेस्मेरिज्म और मृत्यु

मेस्मेरिज्म ! बचपन से ही मुझे जादू-टोने आदि सीखने का कुछ शौक रहा है। इस दिशा में मैं बराबर प्रयत्न करता रहा हूँ। आज मैं [illegible] वाली लोमहर्षण घटना का वर्णन करूँगा। मैंने तो कितनी ही चेष्टा की कि इसे अंधकार में रखूँ, पर जब मैं देखता हूँ कि मेरे चुप्पी साधने से बहुत-सी गलत अफवाहें फैली हैं तो विवश होकर मुझे सत्य पर प्रकाश डालना पड़ता है।

'मेस्मेरिज्म से मौत हो सकती है या नहीं,' इसी ध्येय से प्रेरित होकर मैंने जो प्रयोग किया उसे स्मरण कर आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, मन सिनसिना उठता है, मैं आँखें मींच लेता हूँ, हथेलियों को दोनों कानों पर रखता हूँ, चेष्टा करता हूँ उन दृश्यों को भूलने की, उन स्वरों की प्रतिध्वनि फिर न सुनने की।

जा रहे हो। क्या तुम अपनी मरणावस्था में अपने शरीर पर मुझे मेस्मेरिज़्म का प्रयोग करने दोगे ?"

अरविंद को कौतूहल हुआ। उसने सहर्ष प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मुझे इससे बडा आश्चर्य हुआ। क्योंकि यद्यपि वह सदा अपने पर मेस्मेरिज़्म का प्रयोग किये जाने के लिये प्रस्तुत रहता था, फिर भी वह इस विषय में कभी उत्सुकता न प्रकट करता था।

उसका रोग इस किस्म का था कि उसे अपने अन्त समय के निकट होने का पता चल जाता। इसलिये उसने मुझे आश्वासन दिया कि डाक्टरों द्वारा मृत्यु के निर्धारित समय से ठीक २४ घंटे पूर्व वह मुझे उसकी सूचना देगा।

सात मास से अधिक हुये होंगे, जब एक संध्या को मैंने यह छोटा-सा पत्र पाया —

"प्रिय मित्र,

अब तुम आ सकते हो। डाक्टर बसु और मित्र कहते हैं कि मैं कल आधी रात से अधिक ज़िंदा न रहूँगा। मेरा विचार है कि उनका सोचना ठीक है।"

—अरविंद"

पत्र लिखे जाने के आध घंटे बाद मुझे मिला था और पंद्रह मिनट में ही मैं मृत्यु-शय्या पर पडे मित्र के कमरे में पहुँच गया। कुछ दिनों से मैंने उसे देखा न था। इतने ही समय में उसका चेहरा कितना भयानक हो गया था। वह काला पड गया था, आँखें गड्ढों में घुस गई थीं, सारे शरीर पर झुर्रियाँ पड गई थी और कितने ही स्थानों में हड्डियाँ दिखाई दे रही थीं। नाडी की गति ठीक न थी; फिर भी मुझे आश्चर्य हुआ यह देख कर कि उसके मस्तिष्क में कुछ भी विकार न आया था और शारीरिक स्फूर्ति में भी अधिक परिवर्तन न हुआ था।

उसकी बोली तीक्ष्ण थी। अपनी दवा वह अपने हाथों से पी

लेता था। जब मैं कमरे में घुसा, वह पेंसिल से डायरी में कुछ लिख रहा था। डाक्टर बसु और डाक्टर मित्र भी उपस्थित थे।

अरविंद से कुछ देर तक बात करने के बाद मैं डाक्टरों को अलग ले गया और उनसे रोगी के विषय में पूछा। उन्होंने कितनी ही बातें उसकी अँतड़ी और तिल्ली आदि के सम्बन्ध में बताईं। उनका विश्वास था कि दूसरे दिन रविवार को आधी रात के समय रोगी का अवश्य ही देहावसान हो जायगा। उस समय शनिवार की संध्या थी, और घड़ी सात बजा रही थी।

मैंने प्रयोग करने का निश्चय किया। डाक्टर चले गये थे। मेरे बहुत अनुरोध करने पर उन्होंने दूसरे दिन आना स्वीकार किया था, रविवार की संध्या को दस बजे।

मैं अरविंद से उसकी मृत्यु के विषय में वार्तालाप करता रहा। मैंने भली भाँति उसे अपने प्रस्तावित प्रयोग का ध्येय भी सुझाया। वह इसके लिए प्रस्तुत ही नहीं, बल्कि उत्सुक भी था। उसने इच्छा प्रकट की कि मैं कार्य आरम्भ करने में विलम्ब न करूँ।

निरजन ने घटना को क्रमवार लिखने का निश्चय किया। मुझे अथवा रोगी को इसमे कुछ भी आपत्ति न थी। मैं चाहता भी था कि जो कुछ मैं करूँ उसका वर्णन लिखा हुआ हो।

आठ बजने में पाँच मिनट बाक़ी थे। जब मैंने रोगी का हाथ अपने हाथ में लेते हुये कहा—"अरविंद, तुम निरजन के सम्मुख स्वीकार करो कि तुम चाहते हो कि तुम पर मेस्मेरिज्म का प्रयोग किया जाय।"

उसने कहा—"हा, मैं यह चाहता हूँ।" स्वर धीमा था, पर इतना धीमा न था कि हम उसे सुन न पाते। उसने फिर कहा—"मैं डरता हूँ कि कहीं तुम्हारे आरभ करने के पूर्व ही मैं चल न बसूँ। शीघ्रता करो।"

जब वह बोल रहा था तभी मैं अपने हाथो को विचित्र रीति से हिलाने लगा था। मैं उसको वश में करने की युक्ति जानता था—मैंने पहले उसके माथे के चारों ओर हाथ फेरा, फिर उसके मुख के सम्मुख क्रियाये करने लगा। पर दस बजने के कुछ मिनट बाद तक वह होश ही मे रहा। इस समय तक डाक्टर बसु और मित्र आ गये थे। मैंने सक्षेप मे उन्हे अपनी कार्य-प्रणाली बताई। फिर मैंने दायें-बायें हाथ हिलाना आरम्भ किया। साथ ही साथ मै रोगी की दायीं आँख को ध्यानपूर्वक देख रहा था।

धीरे-धीरे उसकी नाड़ी सुस्त होती गई, साँस भी धीमी पड गई। आध मिनट में कहीं वह एक साँस बाहर निकालता था।

पन्द्रह मिनट तक उसकी यही दशा रही। उसके बाद एक स्वाभाविक, किन्तु गहरी श्वास उसके मुख से निकली। उसकी श्वास की गति और भी धीमी हो गई। रोगी का शरीर उस समय बर्फ की भाँति ठडा था।

ग्यारह बजने में पाँच मिनट पर मैने मेस्मेरिज्म का प्रभाव पड़ते देखा। नेत्रों की कालिमा का स्थान सोने में खुली आँखों की धूमिलता ने ले लिया था। अब मैंने तेजी से हाथ हिलाना शुरू किया। कुछ ही

उसने कुछ न कहा। उसके ओठ धीरे से हिले। मैंने फिर प्रश्न किया। एक बार नहीं, दो बार। तीसरी बार उसका सारा शरीर काँप उठा, उसकी पलकें खुलीं और आँखों की पुतलियाँ दिखाई देने लगीं। मुख खुल गया, जीभ कुछ लड़खड़ाई, फिर एक धीमा-सा स्वर किसी अज्ञात प्रदेश से आता प्रतीत हुआ :

"हाँ,—सो रहा हूँ। जगाओ मत!—इसी भाँति मुझे मरने दो!"

मैंने उसके अंगों की फिर परीक्षा की। वे उसी भाँति कड़े थे। उसका दाहिना हाथ अब भी मेरे आदेश के अनुसार कार्य करता था।

मैंने मृत्यु की विशेष निद्रा में पड़े पुरुष से फिर प्रश्न किया—

"भाई अरविंद, क्या सीने में कुछ दर्द है?"

"नहीं, दर्द नहीं है, मैं मर रहा हूँ।"

मैंने उसे अधिक कष्ट देना उचित न समझा और प्रातःकाल तक, जब तक डाक्टर बसु आ गये, हमने कुछ न किया। रोगी को जीवित अवस्था में देख कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने मुझसे फिर प्रश्न करने के लिये आग्रह किया।

मैंने पूछा—"अरविंद, क्या तुम अभी भी सो रहे हो?"

कुछ मिनट व्यतीत हुये इसके पहले कि मृत्यु-शय्या पर पड़ा अरविंद कुछ कहे। चौथी बार प्रश्न करने पर उसने धीमे स्वर में कहा—"हाँ, अभी भी सो रहा हूँ। मर रहा हूँ।"

डाक्टरों की तब सम्मति थी अथवा यों कहना चाहिये इच्छा थी कि उसे उसी दशा में पड़ा रहने दिया जाय जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाय। क्योंकि उनका विचार था कि इस भाँति वह शांतिपूर्वक मर सकेगा। डाक्टर बसु ने कहा—"अब रोगी कुछ मिनटों का ही मेहमान है।"

मैंने उससे फिर प्रश्न पूछा—"अरविंद! अब तुम किस दशा में हो?"

मृत्यु शय्या पर पड़े अरविंद के मुख पर मैंने कितने ही परिवर्तन लक्ष्य किये। धीरे धीरे उसके नेत्र खुल गये। पुतलियाँ ऊपर चली गईं। वदन काला हो गया और झुर्रियाँ पड़ गईं। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे दीपक वायु के झोंके से एक दम बुझ गया। ऊपर का ओंठ और ऊपर हो गया। मैली दन्त पंक्तियाँ दिखाई पड़ने लगीं। फिर एक झटके से नीचे का जबड़ा गिर गया और उसका मुँह खुल गया। उसके भीतर से फूली हुई काली जीभ दिखाई पड़ रही थी।

मेरा विचार है कि जितने लोग भी वहाँ मौजूद थे उनमें से किसी ने मृत्यु की ऐसी विभीषिका न देखी थी। उस समय अरविंद की दशा इतनी भयानक थी कि हम सब बिस्तर के पास से कुछ कदम पीछे हट गये।

फिर भी स्वर साफ था, कहने का तात्पर्य यह कि समझ में आ जाता था। अवश्य ही अरविंद मेरे प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा कर रहा था। उसी प्रश्न का जो दस मिनट पहले मैंने उससे किया था।

उसने कहा—"हाँ,—नहीं,—मैं ऐसा हूँ—और अभी-अभी मैं मर गया—मर गया हूँ।"

हम सब भय से सिहर उठे। किसीने भय को छिपाने की चेष्टा तक न की। ओह! कितना दर्दनाक दृश्य था। निरजन तो सज्ञाहीन हो गया। नर्सें कमरे के बाहर चली गईं और किसी भाँति लौटने को राजी न हुईं। मैं स्वय नहीं कहना चाहता कि मेरी क्या दशा हुई।

फिर करीब एक घटे तक मैं और दोनों डाक्टर निरजन को होश में लाने की चेष्टा करते रहे। जब उसकी बेहोशी दूर हो गई, तो फिर हमने अरविंद की ओर ध्यान दिया।

अरविंद की दशा मे अधिक परिवर्तन न हुआ था। अवश्य ही अब उसकी नाक के आगे आईना रखने से उस पर भाप न जमती थी। तो क्या उसकी मृत्यु हो गई थी?

डाक्टर बसु ने उसके बाये हाथ से रक्त निकालना चाहा, पर वे इसमे असमर्थ रहे। यहाँ मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि उसके अग अब मेस्मेरिज़म के काबू के बाहर हो गये थे। मैंने कितनी ही देर तक चेष्टा की कि वह मेरे हाथ की तरह अपना हाथ हिलाये, पर इसमें मैं सर्वथा असमर्थ रहा। फिर भी जब मैं अरविंद से कोई प्रश्न पूछता, तो उसकी जीभ कुछ आश्चर्यजनक ढग से हिलती। दूसरों के पूछने का उस पर कुछ प्रभाव न होता।

मेरा विश्वास है कि मैंने उस मृत्यु के मुख मे पडे पुरुष की दशा का काफी वर्णन कर दिया है। दूसरी नर्सें बुलाई गईं, और दस मैं डाक्टरों और विद्यार्थी मित्र के साथ रोगी के घर से बाहर

तीसरे पहर हम रोगी को देखने आये। उसकी दशा में परिवर्तन न हुआ था। हम लोग कुछ देर तक उसे जगाने के औचित्य पर परामर्श करते रहे। हम इसी निर्णय पर पहुँचे कि उसे उस दशा से जाग्रत करने में कोई लाभ नहीं है। यह विदित ही था कि मृत्यु (अथवा जो अवस्था साधारणतया मृत्यु नाम से जानी जाती है) मेस्मेरिज्म के प्रभाव से रुक गई थी। सभी का पूरा विश्वास था कि उसे जाग्रत अवस्था में लाने का अर्थ उसकी मृत्यु है।

लगभग सात महीने तक हम अरविंद को देखने प्रति दिन जाते रहे। कभी-कभी हमारे मित्र भी हमारे साथ हो लेते। हम सदा उसे ठीक उसी दशा में पाते। नर्स उसकी सेवा शुश्रूषा करती रहती।

गत शुक्रवार को हमने उसे जगाने का निश्चय किया अथवा चेष्टा की, और कदाचित उसी का यह परिणाम हुआ है कि चारों ओर तरह तरह की अफवाहें फैल रही हैं। मुझे पता नहीं क्यों लोगों को इस विषय में इतना कौतूहल हुआ है।

"ईश्वर के नाम पर !—शीघ्रता करो !—शीघ्रता करो !—मुझे सुला दो—नहीं तो, शीघ्रता करो !—मुझे शीघ्र जगा दो—मैं तुमसे कह रहा हूँ कि मेरी मृत्यु हो गई है !"

मैं हड़बड़ा गया। मैं क्या करूँ, इसका मैं शीघ्र ही निश्चय न कर सका। मैंने रोगी को सुव्यवस्थित करने की चेष्टा की। मैं उसे फिर निद्रित अवस्था में कर देना चाहता था। पर इस दिशा में सफलता न मिलती देख, मैंने उसे जाग्रत अवस्था में लाने का प्रयत्न किया।

धीरे-धीरे रोगी पर जाग्रत अवस्था के चिह्न प्रकट होने लगे। सभी साँस रोक कर देखने लगे कि अब क्या होता है।

किसी जीवित व्यक्ति के लिये असंभव था कि जो घटना घटी उससे वह रोमाञ्चित न हो जाय।

मैं मेस्मेरिज्म के प्रयोग कर ही रहा था कि ऐसा प्रतीत हुआ, मानो अरविंद के मुख से 'मरा मरा' की ध्वनि निकल रही है। वह कुछ कहने की चेष्टा कर रहा था। पर उसमें इतनी शक्ति न थी कि उसकी ध्वनि हमारे कानों तक पहुँच सके।

फिर अचानक उसका सम्पूर्ण शरीर सिकुड़ने लगा—ऐसा सिकुड़ गया जैसे...! ओफ आज भी उसका स्मरण आते ही मेरे मस्तक पर पसीना आ जाता है।

यह सब कुछ ही क्षणों में हो गया। बिस्तर पर महादुर्गंध वाले पदार्थ का एक सड़ा-गला ढेर पड़ा था—अरविंद का शरीर सात महीने से सड़ रहा था।

सोने का मकड़ा

वर्षों पूर्व सिरीप से मेरी जान-पहिचान हुई थी। पर अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् सिरीप पूर्वीय द्वीप समूह के एक द्वीप को चला गया था। कर्जदारों से बचने के लिए उसे ऐसा करना पड़ा था। भाग्यवश वर्षों बाद मसालों के व्यापार के सिलसिले में मुझे वहाँ जाना पड़ा।

शिशिर ऋतु में वहाँ अधिक सर्दी नहीं पडती थी। इसलिये यदा-कदा ही तापने के लिये अग्नि की आवश्यकता पडती थी। सन् १८७६ ई० के अक्टूबर की १६ तारीख को बडी ठण्ढ थी। इधर कई सप्ताह से मैं अपने मित्र से नहीं मिल पाया था. इसलिए सन्ध्या होने के कुछ पूर्व ही मैं एक छडी हाथ मे लेकर अपने मित्र की झोपडी की ओर चला।

मेरे स्थान से उसकी झोपडी तीन मील की दूरी पर थी। कितनी ही झाडियों और सँकरे मार्गों से होता हुआ मैं वहाँ पहुँचा। झोपड़ी के द्वार को मैंने स्वभावानुसार थपथपाया; पर जब मुझे कोई उत्तर न मिला, तो मैं ताली की तलाश करने लगा। मैं जानता था कि ताली छप्पर में कहाँ खुसी थी। फिर दरवाज़ा खोल कर मैं भीतर गया। कमरे के बीच मे तेज़ आग जल रही थी। इससे मुझे कुछ आश्चर्य हुआ, पर प्रसन्नता भी हुई। ठण्ढ से मेरे हाथ-पैर ठिठुर रहे थे।

मैंने अपना लबादा उतार कर एक ओर रख दिया, चिटकती हुई लकडियों के पास एक आरामकुरसी डाल ली और धैर्य के साथ अपने मित्र की प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ-कुछ अँधेरा होने पर वह लौटा। उसने मेरी बडी अभ्यर्थना की। कल्लू उसके साथ ही था, झट जल-मुर्गी का शोरवा बनाने चला गया। पहले मैं मांस से परहेज करता था, पर यात्रा का इसके बिना काम चलना असम्भव था, इसलिए अब मांसादिक मैं स्वादपूर्वक खाता था।

शिरीष उस समय, मुझे क्या करना चाहिये, बड़ा उत्कण्ठित था। उसने एक नये प्रकार का मकडा पाया था, और उसका कहना था कि तीन हज़ार वर्षों से संसार के किसी संग्रहालय में वैसी दुर्लभ वस्तु न थी। "इस विषय में", उसने कहा—"मैं तुमसे कल वार्त्तालाप करूँगा।"

"और आज रात्रि में ही क्यों नहीं?" मैंने अपने हाथ सेंकते हुए

कहा। पर मैं मन ही मन मना रहा था कि ये सारे पोथे समुद्र के ऊपर न तैर कर समुद्र के नीचे किसी ऐसे स्थान में हों, जहाँ से वे कभी हमारी पृथ्वी पर न आसकें, किसी मृत मछली के पेट फाड़ने पर भी ये उपलब्ध न हों, तो अच्छा।

कंगन को आरसी क्या? कल स्वयं तुम उसके विषय में निर्णय कर सकोगे। तब तक मैं तुम्हें उसकी सूरत-शक्ल का कुछ अनुमान भर करा सकता हूँ।" यह कह कर वह एक छोटे-से स्टूल पर बैठ गया, फिर उसके हाथ में कलम और दावात थी; पर कोई कागज नहीं। उसने एक दराज़ खोला, पर उसमें भी उसे कागज न मिला।

"कुछ परवाह नहीं," उसने अन्त में कहा—"इससे काम चल जायगा।" और यह कह कर उसने अपनी जेब से बादामी कागज़-जैसा किसी वस्तु का एक टुकड़ा निकाला और उस पर क़लम से एक चित्र बनाया। जब वह यह सब कर रहा था, मैं आग के पास ही अपने आसन पर जमा था, क्योंकि अभी भी मेरा जाड़ा दूर न हुआ था। जब चित्र पूरा हो गया, तो उसने मुझे देखने के लिए दिया। जैसे ही मैंने उसे लिया, दरवाज़े पर ज़ोर से गुर्राने का स्वर सुनाई पड़ा और उसके पश्चात् ही द्वार को पंजों से खरोंचने का शब्द भी हुआ। कल्लू ने दरवाजा खोला। दरवाज़ा खोलते ही शिरीष का शिकारी कुत्ता भीतर दौड़ आया और मेरे कंधे पर दो पैर जमा कर मेरा मुँह चाटने लगा, क्योंकि वह कुत्ता मुझसे बड़ा हिल-मिल गया था। जब उसका दुलार समाप्त हुआ, तो मैंने अपने मित्र द्वारा बनाये हुए चित्र पर दृष्टि डाली।

"तो!" मैंने कुछ देर तक उसे देखने के पश्चात् कहा—"मैं मानता हूँ कि यह एक आश्चर्यजनक मकड़ा है; इस तरह की इसके पूर्व कोई वस्तु मैंने नहीं देखी। जब तक कि यह किसी की खोपड़ी विशेष का ढाँचा न हो, तब तक इसे किसी की खोपड़ी ही समझनी चाहिये।

"मृत की खोपड़ी!" शिरीष ने दोहराया—"हूँ, कागज़ पर तो उसकी शक्ल-सूरत कुछ ऐसी ही है। ऊपर के दो काले दाग नेत्र हैं,

और नीचे का लम्बा दाग मुँह है। फिर पूरी शकल अंडाकार भी तो है।"

"हाँ!" मैंने कहा—"पर शिरीष, मेरे विचार से तुम कोई कुशल चित्रकार नहीं। जब तक मैं उस मकड़े को नहीं देख लेता, तब तक मैं उसकी शकल सूरत के विषय में कुछ कह नहीं सकता।"

"नहीं, मैं कह नहीं सकता।" उसने सकपका कर कहा—"मैं काफी अच्छे चित्र बना लेता हूँ—कम से कम मुझे चित्र अच्छे ही बनाने चाहिये। मुझे अच्छे शिक्षक मिले थे, और मैं कुछ ऐसा भोंदू तो हूँ नहीं।"

"तो फिर तुम मज़ाक कर रहे होगे।" मैंने कहा—"यह एक अच्छी खोपड़ी का चित्र है, मैं तो कहूँगा, बहुत अच्छी, यद्यपि मेरा इस विषय में कुछ ज्ञान नहीं है—फिर भी तुम्हारा मकड़ा, मैं दावे से कह सकता हूँ, संसार के सब से अद्भुत मकड़ों में से है। इस द्वीप की भाषा में हम क्या कहते हैं—"स्केरेब्योकापुट् होमिनिस" अथवा कुछ ऐसा ही नाम है। अच्छा, कभी तुम मुझे एक विचित्र घोंघे के विषय में कुछ बताना चाहते थे?"

"हाँ, हाँ, '[illegible]' के विषय में।" शिरीष ने कहा—"मैंने स्वयं '[illegible]' बनाए हैं और मेरे विचार से वे असली प्रतीत होते हैं।"

"स्वाभाविक है।" मैंने कहा—"मुझे उन्हें दिखाओ भी तो।" पर इसी समय मैंने देखा, उसका मुख गम्भीर हो गया। उसका कारण क्या हो सकता है, मैं न समझ सका।

से उस कागज की परीक्षा करता रहा—उसे उलटते-पलटते हुए। पर उसने कुछ कहा नहीं। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। तो भी मैंने उचित न समझा कि उसकी शोचनीय दशा पर टीका-टिप्पणी कर उसे और दुःखी बनाऊँ। फिर उसने अपनी जेब से चमड़े का एक बैग निकाला और उसमें वह कागज रख कर उसे दराज में रख, उसमे ताला लगा दिया।

अब वह अधिक सुव्यवस्थित हो गया था; पर उसका पूर्व का भाव नष्ट हो चुका था। वह उस समय किन्हीं विचारों में डूबता-उतराता प्रतीत होता था। और जैसे-जैसे रात्रि होती गई, उसकी गम्भीरता बढ़ती गई। उसे प्रसन्न करने के मेरे सारे प्रयत्न असफल हुए। मैंने रात्रि वहीं बिताने का निश्चय किया था; पर अपने मित्र को इस दशा में देख कर मुझे ऐसा करने का साहस न हुआ। उसने मुझसे रुकने का भी आग्रह न किया। पर मैंने लक्ष्य किया कि मुझसे विदा होते समय उसके हृदय में मेरे प्रति श्रद्धा की कमी न थी।

एक मास पश्चात् (इस बीच मैं शिरीष से कभी मिलने न गया था) कल्लू मेरे घर आया। मैंने उसे कभी इतना म्लान मुख न देखा था। मुझे भय हुआ कि कहीं मेरे मित्र पर कोई विपत्ति न आ गई हो।

"कहो कल्लू!" मैंने कहा, "क्या मामला है—तुम्हारे मालिक का क्या हाल है?"

"महाशय, सच पूछिये तो उनकी दशा अच्छी नहीं है।" कह कर कल्लू ने ऐसी गम्भीरता से सिर हिलाया कि मैं सकपका गया।

"क्या वह अस्वस्थ है? कुछ पता है, क्या रोग है?"

"महाशय, मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता, यद्यपि वे बहुत बीमार हैं।"

"बहुत बीमार! कल्लू, तुमने पहले ही मुझे खबर क्यों नहीं दी? क्या उन्होंने खाट पकड़ ली है?"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। कष्ट का कारण क्या है, यह मैं नहीं जानता, पर वे बहुत चिंतित हैं।"

"कल्लू, तुम क्या अनाप सनाप बक रहे हो! तुम कहते हो कि तुम्हारा स्वामी अस्वस्थ है, पर क्या उसने तुम्हें नहीं बताया कि क्या बीमारी है?"

"महाशय, हमारे मालिक पागल हैं। अपने दुख-दर्द का कुछ हाल नहीं बताते। कहते हैं कि उन्हें कुछ नहीं हुआ। पर आप ही बताइये, तब क्यों वे सिर नीचा किये और कंधा उचकाये इधर से उधर घूमते फिरते हैं। बगल में वे सदा स्लेट पेंसिल भी दाबे रहते हैं..."

"क्या कहा?"

"स्लेट पेंसिल, और ऐसे अंक लिखते हैं कि मेरी समझ में कुछ नहीं आता। वैसे आप जानते हैं कि मुझे थोड़ा बहुत अक्षर ज्ञान तो है ही। महाशय, मुझे बड़ा भय लगता है। हां, महाशय! उसी दिन वे तड़के ही घर से निकल गये थे और सारे दिन गायब रहे। मैंने उन्हें पीटने के लिए एक मोटा बाँस का डंडा ले लिया था, पर भगवान जानते हैं कि [illegible] वे कुछ लटकाये होते, तो मेरा हृदय उन्हें पीटने का न हुआ।"

"क्या बक रहे हो?"

"महाशय, मेरा मतलब उससे है—समझे?"

"उससे अर्थात् .."

"मकडे से। हमारा पूरा विश्वास है, महाशय, कि उस सोने के मकडे से उनका सिर फिर गया है।

"और तुम्हारे इस विचार का आधार क्या है?"

"अरे, क्या आपने उसका मुख नहीं देखा। ऐसा काटता है कि कोई उसके निकट तो जा ही नहीं सकता। महाशय, मालिक उसको अपने हाथ में लिये थे, पता नहीं क्या हुआ कि अचानक उन्होंने हडबडा कर उसे छोड दिया। अब आप ही बताइये, यदि मैं उसके बडे मुँह से घबराता हूँ, तो क्या बेजा करता हूँ। इसलिए अब मैं उसे अँगुली से कभी नहीं छूता। पहले हाथ में कागज़ या कपडा लपेट लेटा हू। फिर उसे छूने की हिम्मत करता हूँ। फिर मैं उसका मुख भी दूसरी ओर रखता हूँ, इन्हीं कारणों से वह मुझे नही काट पाता।"

"तुम्हारे कहने से पता चलता है कि तुम्हारे स्वामी को उस मकड़े ने सचमुच काट लिया है, और इससे वह अस्वस्थ हो गये हैं।

"मैं ऐसा केवल सोचता ही नहीं, जानता भी हूँ। यदि उन्हें उस मकडे ने नहीं काटा है, तो क्यों वे उस मकडे के विषय में रात्रि में भी स्वप्न देखते हैं? मैं आज आपको बताता हूँ कि मैंने अपने काका से उस सोने के मकडे के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन रखा था।"

"पर तुम्हें कैसे पता कि वह स्वर्ण-विषयक स्वप्न देखता है?"

"मैं कैसे जानता हूँ? वह सोते सोते बडबडाते जो हैं! इससे मैं और क्या समझूँ?"

"सम्भव है कि तुम ठीक कहते हो; पर यह तो बताओ, आज तुम्हारा यहाँ आना कैसे हुआ?"

"क्या करूँ, महाशय!"

"शिरीष ने कुछ कहला भेजा है?"

"नहीं महाशय, उन्होंने यह पत्र दिया है।" और कल्लू ने मुझे शिरीष का पत्र दिया, जिसमें लिखा था :

'मित्र,

तुम इतने दिन से आये क्यों नहीं? मेरा विश्वास है कि तुम इतने बड़े मूर्ख नहीं हो कि मेरे उस दिन के व्यवहार पर क्रुद्ध हो गये हो। नहीं, यह असम्भव है।

जब अन्तिम बार मैं तुमसे मिला था, मैं चिन्तित था—अकारण ही नहीं। मुझे तुमसे कुछ कहना है, पर मैं स्वयं नहीं जानता कि मुझे कैसे कहना चाहिये, अथवा कहना भी चाहिये कि नहीं।

उसके विषय में जो कुछ मुझसे कहा था, उससे मुझे कुछ संतोष न हुआ था। मुझे भय था कि कहीं जीवन की सतत दुर्घटनाओं से उसका दिमाग न फिर गया हो। इसलिए बिना किसी विलम्ब के मैं कल्लू के साथ जाने को प्रस्तुत हो गया। स्थल का मार्ग दुर्गम होने के कारण समुद्री मार्ग से हमने शिरीष की झोपड़ी की ओर जाने का निश्चय किया।

समुद्र के किनारे पहुँचने पर मैंने एक नौका में एक गँडासा और तीन फावड़े रखे देखे। सभी नये प्रतीत हो रहे थे।

"कल्लू, ये किसलिए हैं?" मैंने उनकी ओर संकेत करते हुए पूछा।

"मालिक ने मँगाये हैं।"

"तो ये यहाँ क्यों रखे हैं?"

"अभी तो मैं इनको नगर से लाया हूँ। बहुत दाम देना पड़ा है।"

"यह मेरी समझ से तो बाहर की बात है कि शिरीष को गँडासा और फावड़ों की ऐसी आवश्यकता ही क्या आ पड़ी?"

"मैं नहीं जानता, पर कदाचित् उस मकड़े के सिलसिले में इनका काम पड़ेगा।"

मुझे भलीभाँति ज्ञात हो गया कि कल्लू से कोई मतलब की बात मालूम न हो सकेगी। वह सदा उलट फेर कर उसी ढाँचे पर बात ले आता था। मैं नौका में बैठ गया और उसे खेने लगा। तीव्र वायु बह रही थी, शीघ्र ही हम अपने लक्ष्य पर पहुँच गये। वहाँ से कोई पाँच-छः फर्लांग पर शिरीष की झोपड़ी थी। तीन बजे हम वहाँ पहुँचे। वह बड़ी उत्कंठा से हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी विचित्र भावभंगी से मेरे संदेह की पुष्टि ही हुई। उसका मुख पीला पड़ गया था, पर उसके नेत्रों में एक विलक्षण ज्योति थी। उसके स्वास्थ्य के विषय में

मकडे की भलीभाँति परीक्षा कर चुका था, मैंने तुम्हे इसलिए बुला भेजा कि मैं तुम्हारी सलाह से प्रारब्ध के कार्य में.. "

"भाई शिरीष!" मैं बात काटते हुए बोला—"अवश्य ही तुम अस्वस्थ हो, मुझे तुम्हारी देख-रेख करनी होगी। जाओ, अब विश्राम करो। मैं कुछ दिन यहीं रहूँगा—जब तक तुम अच्छे नहीं हो जाते। तुम्हें कुछ बुखार है क्या?"

"मेरी नाडी देखो!" उसने कहा।

उसकी नाडी ठीक गति से चल रही थी, बुखार का आभास तक न था।

"पर यह भी तो सम्भव है कि तुम अस्वस्थ हो और तुम्हें बुखार न हो। मैं तुम्हारे लिए औषध का प्रबन्ध कर दूँगा। सबसे पहले तो तुम सो जाओ, फिर...?"

"तुम भ्रम मे पडे हो।" उसने बात काटते हुए कहा—"मैं इतना उत्कठित हूँ कि मेरी दशा इससे अच्छी हो ही नहीं सकती। यदि तुम सचमुच मेरा भला चाहते हो, तो तुम इस उत्कठा को शान्त करने में मेरी सहायता करो।"

"कैसे?" मैंने पूछा।

"यह सहज है। मैं कल्लू के साथ पहाडियों पर कार्यवश जाना चाहता हूँ, और इस यात्रा मे हमे एक ऐसे साथी की आवश्यकता है, जिसे हम गूढतम रहस्य बता सकें। मैं अपने लक्ष्य में सफल होऊँ अथवा असफल, मेरी उत्कण्ठा तो शान्त हो जायगी।

"मैं किसी भी भाँति तुम्हारी सहायता करना चाहता हूँ, पर क्या तुम्हारे कथन का यह अर्थ है कि इस सत्यानाशी मकडे के कारण ही तुम ऐसा कर रहे हो?"

"हूँ।"

"तो शिरीष, मैं ऐसी सिर्टीपन की बातों में किसी का साथ नहीं दे सकता।"

"मुझे शोक है, अत्यन्त शोक, क्योंकि तब हमें अकेले ही पहाड़ियों पर खोज-बीन करनी होगी।"

"हाय ! अवश्य तुम पागल हो रहे हो। पर यह तो बताओ, वहाँ तुम कितनी देर तक रहोगे?"

"कदाचित पूरी रात्रि। यदि हम अभी प्रस्थान कर दें, तो प्रातःकाल तक हम लौट सकते हैं।"

"और तुम भी मुझे आश्वासन दोगे कि जब तुम्हारा वहम दूर हो जायगा और यह मकड़े का झगड़ा तुम सन्तोषपूर्वक तय कर लोगे, तो तुम मेरी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करोगे।"

"हाँ, मैं आश्वासन देता हूँ, पर अब हमें चल देना चाहिये, समय खोने से क्या लाभ?"

हम लोग पश्चिमोत्तर दिशा में चल रहे थे। शीघ्र ही हमारे सामने पहाड़ियाँ आ गई थीं। मेरे विचार से वहाँ वर्षों से किसी पुरुष का आगमन न हुआ था, क्योंकि कहीं पद-चिह्न नहीं दीख पड़ते थे। जंगली प्रदेश था, बीहड़ भूमि। शिरीष इस भाँति आगे आगे चल रहा था, जैसे वह उन मार्गों से परिचित ही हो। कभी-कभी रुक कर इधर-उधर वृक्षों पर बने चिह्नों को भी वह देख लेता था। वे चिह्न उसके पूर्व कभी उसने ही बनाये थे।

इस भाँति दो घंटे तक हम चलते रहे। सूर्यास्त के समय हम बड़े भयावने विभाग में पहुँचे। उस पठारी भूमि पर विशाल वृक्षों की बहुतायत थी, और भूमि बीच बीच में इतनी फटी हुई थी कि हम बड़ी सावधानी से कदम उठाते थे। सरसराती हुई वायु उस स्थान की भयानकता में वृद्धि कर रही थी।

जिस प्राकृतिक पठार पर हम पहुँचे, वह छोटी-छोटी झाड़ियों से भरा पूरा था, हम बड़ी मुश्किल से गँड़ासे से मार्ग साफ करते हुये आगे बढ़ रहे थे। कल्लू ने अपने स्वामी की आज्ञा से एक बड़े ओक-वृक्ष के नीचे का स्थान साफ किया। उस ओक-वृक्ष के चारों ओर ओक के वृक्ष थे, पर वह उन सबसे विशाल और सुन्दर था। उसकी शाखायें सुदृढ़ और उसका तना सुविशाल था।

"क्यों कल्लू," शिरीष ने पूछा, "तुम इस वृक्ष पर चढ़ सकते हो?"

वृद्ध कल्लू अकस्मात् पूछे गये प्रश्न से सहम गया और उसके मुँह से बोली न निकली। फिर वह उस मोटे तने की ओर बढ़ा; धीरे-धीरे उसकी परिक्रमा की और ध्यानपूर्वक उसकी परीक्षा की।

"हाँ, मालिक, कल्लू ने अब तक जितने पेड़ देखे हैं वह सब पर चढ़ सकता है।"

"तो शीघ्र ही तुम इस पर चढ़ जाओ, क्योंकि अँधेरा होने में

हब्शी ने तत्काल उसकी आज्ञा का पालन किया। उसे इस प्रयास में अधिक कष्ट न हुआ। ऊपर जाते-जाते वह भूमि से अदृश्य-सा हो गया। उसके पश्चात् ही उसका स्वर सुनाई दिया—"और कितने ऊपर ?"

"तुम कितने ऊँचे गये हो ?" शिरीष ने पूछा।

"बहुत ऊपर।" हब्शी ने कहा—"अब आकाश दिखाई दे रहा है।"

"आकाश की चिंता मत करो। सुनो, मैं जो कह रहा हूँ, नीचे तने की ओर देख कर बताओ, इस ओर तुमने कितनी गाँठें पार की हैं ?"

"एक,दो तीन, चार, पाँच—पूरी पाँच गाँठें महाशय ! यहीं रुक जाऊँ या और ऊपर बढ़ूँ ?"

"एक गाँठ और ऊपर जाओ।"

कुछ मिनट पश्चात् फिर कल्लू का स्वर सुन पड़ा यह कहते हुए कि वह सातवीं गाँठ पर पहुँच गया था।

"अच्छा, कल्लू !" शिरीष बोला, उस समय वह बड़ा उत्कंठित था—"मैं चाहता हूँ कि उस गाँठ में जो डाल गई है, उस पर तुम यथासंभव शीघ्र जाओ। यदि कोई आश्चर्यजनक वस्तु दिखाई पड़े, तो मुझे बताओ।"

अब तक यदि मुझे शिरीष के पागल होने में कोई रहा-सहा सन्देह था, तो वह भी दूर हो गया। मैं गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा कि उससे उसी समय घर लौटने के लिए आग्रह करना कहाँ तक उचित होगा। जब मैं इस भाँति विचारों को अपने मस्तिष्क में उलट-पुलट रहा था, मैंने फिर कल्लू की आवाज़ सुनी।

"महाशय, भय लगता है, अब मैं आगे नहीं बढ़ सकता। आप चाहे जो करो, यह डाल मुर्दार है।"

"तो सुनो, यदि तुम उस मृतप्राय डाल पर जहाँ तक सम्भव होगा—मकड़े को साथ लिये हुए जाओगे, तो उतरने पर मैं तुम्हे चाँदी का एक सिक्का दूँगा।"

"यह लीजिये महाशय, मैं जा रहा हूँ," हब्शी ने तत्काल उत्तर दिया—"बिलकुल अन्त आ गया।"

"डाल का बिलकुल अन्त!" शिरीष ने चीख कर कहा—"क्या तुम्हारे कथन का यही अभिप्राय है कि तुम डाल के बिलकुल छोर पर स्थित हो?"

"शीघ्र ही अन्त हो जायगा, महाशय! अ-अ-अ ओह! राम-राम यहाँ यह क्या है!"

"अच्छा!" शिरीष अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—"क्या है?"

"यह किसी मनुष्य के सिर का ढाँचा है। इसको किसी ने यहाँ लाकर लटका दिया है, और कौवे सारा मांस खा गये हैं।"

"मनुष्य की खोपड़ी! अच्छा—यह डाल से किस भाँति बँधी है? कैसे यह डाल से चिपटी?"

"महाशय, मै अभी देखता हूँ! अरे, बड़ा मज़ा है—एक बड़ा कीला खोपड़ी में घुसा है। इसी से वह पेड़ में टँगी है।"

"कल्लू, ध्यानपूर्वक सुनो, जो मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।"

"हाँ, महाशय!"

"सुनो, तो तुम खोपड़ी की बाईं आँख का पता लगाओ।"

"यह अच्छी रही! कोई बाईं आँख हो तब न!"

"धत्तेरे की! तुझे अपने दाये हाथ के अन्तर का पता है या नहीं!"

"यह मैं जानता हूँ, मैं सब कुछ जानता हूँ। बाये हाथ से मैं लकड़ी चीरता हूँ।"

"अवश्य! और तुम्हारी बायीं आँख भी उसी ओर है, जिस ओर

तुम्हारा बायाँ हाथ है। अब तो तुम खोपड़ी की बाईं आँख का पता लगा सकते हो, अथवा उस स्थान का जहाँ बायीं आँख थी। मिली?"

काफी समय तक उसे उत्तर न मिला। अन्त में कल्लू ने पूछा—"मैं बायीं आँख पा गया हूँ। अब क्या किया जाय?"

"उसके भीतर से मकड़े को गिराओ, पर इसका ध्यान रखना कि धागा तुम्हारे हाथ से छूट न जाये।"

"महाशय, यह मैंने कर लिया, कुछ दिक्कत नहीं हुई। नीचे मकड़े को देखा!"

इस वार्तालाप के समय कल्लू दिखाई न पड़ता था, पर उस लम्बे धागे में लटका मकड़ा दिखाई देता था, और अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में वह मकड़ा चमचमा रहा था। इस धागे पर भी सूर्य की ज्योति पड़ रही थी। ढाँचा उस समय डालियों से अलग था, और यदि उसे गिरने दिया जाता, तो वह हमारे पैर के पास गिरता। सिपाह ने [illegible] की सुरंग [illegible] कर [illegible] दी, और कल्लू को धागा छोड़ कर नीचे उतर आने की आज्ञा दी।

घेरे की भूमि को खोदने लगा और उसके आग्रह पर हमने उसका अनुकरण किया।

सच पूछो तो मुझे उस समय वैसे मजे की किंचित् मात्र भी आवश्यकता न थी, और मैंने उसका विरोध ही किया होता। रात्रि अँधेरी थी, और इतनी दूर ऊबड़-खाबड़ में चलने से अंग-प्रत्यंग टूट रहे थे। पर मैंने इससे बचने का कोई उपाय न देखा, फिर मेरी अस्वीकृति मेरे मित्र को कितनी कटु प्रतीत होगी, इससे भी मैं अनभिज्ञ न था। यदि मुझे कल्लू की सहायता पर विश्वास होता, तो मैं जबर-दस्ती उस पागल को उसी समय उसके घर लौटा ले चलता। पर मैं यह भलीभाँति जानता था कि वैसे वह मेरे प्रति कितने ही उदार विचार रखता हो; पर अपने मालिक के विरुद्ध वह मेरी सहायता कभी न करेगा।

मेरे विचार से शिरीष स्वयं अन्धविश्वासी था और एक मकड़े के पाने से, जिसे वह ठोस स्वर्ण का समझता था, उसके सिद्धान्तों की पुष्टि ही हुई थी। पागलपन की ओर झुकता हुआ मस्तिष्क शीघ्र ही ऐसी बातों में विश्वास कर लेता है। और कल्लू! पर वह तो मूर्ख था। मुझे स्मरण हो आया बेचारे शिरीष का वह वक्तव्य, जिसमें उस मकड़े को उसने प्रारब्ध की देन बताया था। तो इन सब बातों से मैं चिंतित था, पर और कोई दूसरा मार्ग न देख कर मैंने खुदाई में शिरीष और कल्लू का साथ देना ही ठीक समझा। मुझे विश्वास था कि शीघ्र ही गड़ा हुआ धन पाने में असफल हो, शिरीष उसी कार्य से विरत हो घर लौट चलेगा।

हम लोगों ने लालटेनें जला लीं और कार्य में जुट पड़े। और जब उनकी ज्योति हम पर और हमारे औजारों पर पड़ती, तो मैं सोचता कि यदि कोई हमें इस दशा में देखे, तो क्या कहेगा। ऐसे विचित्र स्थान में, ऐसे आश्चर्यजनक कार्य में हम लवलीन थे।

लगातार दो घण्टे तक हम खुदाई करते रहे। हम एक दूसरे से वार्तालाप न करते थे। रात्रि की निस्तब्धता बीच बीच में कुत्ते के भौंकने से ही भङ्ग होती थी। कुत्ते को कदाचित हमारे कार्य में बड़ा आनन्द आ रहा था। धीरे धीरे उसका भौंकना इतना बढ़ गया कि कहीं आसपास उसे सुन कर कोई आ न जाये। मैं तो यही चाहता था कि कोई आ जाये, ताकि मुझे शिरीष को उसके घर तक उठा ले जाने में सहायता मिले। कल्लू ने उसे शान्त करने की तरकीब निकाली। झटपट पत्तों की एक विचित्र, पर मज़बूत डोरी बना डाली और उससे कुत्ते का मुँह बाँध दिया। फिर वह किलकारी भर कर अपने काम में आ जुटा।

"अबे सुअर!" शिरीष ने दाँत पीसते हुए कहा, "नरक के कीड़े! बोल, उत्तर दे, बहाना न बना। बता, बता, तेरी बायीं आँख कौन है?"

"अरे भाई, अवश्य यह मेरी बायीं आँख है।" भयभीत कल्लू ने चीखते हुए कहा। उसने अपनी अँगुली दाहिनी आँख पर रखी थी, और वह उसे वहीं रखे रहा; कदाचित् अपने स्वामी के भयंकर क्रोध को देख कर।

"हूँ, मैंने भी वही सोचा था! नहीं नहीं, मैं जानता था! अ-हा-हा!" शिरीष खुशी से नाचने लगा। उसने कल्लू को छोड़ दिया था। कल्लू खड़ा होकर अपने स्वामी की गतिविधि को विचित्र भावभंगी से देख रहा था।

"आओ, हम लौट चलें।" शिरीष ने कहा, "अभी इस मनोरंजक कथा का अन्त नहीं हुआ।" और फिर वह उसी ओक-वृक्ष की ओर चला।

"कल्लू!" उसने पेड़ के नीचे पहुँच कर कहा, "इधर आओ! खोपड़ी डाल में कैसी बँधी थी? मुख तुम्हारी ओर था अथवा बाहर की ओर?"

"बाहर की ओर था, जिसमें कौवे उसकी आँख का माँस निकाल सकें।"

"तो फिर तुमने किस आँख से मकड़ा गिराया था?"—शिरीष ने कल्लू के दोनों नेत्र छूते हुए कहा।

"महाशय, इस आँख से—बायीं आँख से—आप ही ने तो ऐसा बताया था।" और फिर कल्लू ने अपनी दाहिनी आँख पर अँगुली रखी।

अब मेरे मित्र ने (और मुझे उसके पागलपन में भी आनन्द आ रहा था) वहाँ से कीला। उखाड़ा। इस बार उस स्थान से तीन इंच

सकता, मैं उससे बुरी तरह घबराता था। अरे कल्लू, अब क्या तुम शर्मिन्दा नहीं? क्यों, उत्तर क्यों नहीं देते?"

अन्त में यह आवश्यक हो गया कि मैं मालिक और नौकर दोनों ही से खजाने को शीघ्रातिशीघ्र हटाने का आग्रह करूँ। काफी रात बीत चुकी थी, और हमारे लिए यह नितांत आवश्यक था कि सारा खजाना प्रातःकाल से पूर्व ही गिरोह के स्थान पर पहुँच जाय। सहज न था तय करना कि क्या करना चाहिये, और इसमें ही हमारा बहुत सा अमूल्य समय नष्ट हो गया। अन्त में हमने सन्दूक से दो तिहाई सामान बाहर निकाला, फिर हम सन्दूक को उठाने में समर्थ हुए। यह सामान झाड़ियों में छिपा दिया गया, और कल्लू ने कुत्ते को उसकी देख रेख के लिए तैनात कर दिया—उसे भलीभाँति समझाते हुए कि न तो यह स्थान से हिले, न चिल्लाये—जब तक हम लौट न आवें।

छाँट कर अलग अलग स्थानों में रखीं, तो हमने देखा कि जितना हमने सोच रखा था, उससे कहीं अधिक धन हमें मिला था। दस-बारह लाख रुपये के मूल्य के सोने के सिक्के थे। चाँदी का कहीं नामो-निशान तक न था। स्वर्ण पुरातन के सिक्कों के रूप में था—अशर्फियाँ, मोहरें आदि। भारतीय, अरबी, अँगरेजी, फ्रांसीसी सभी प्रकार के सिक्के थे। कुछ हमने उससे पूर्व कभी देखे भी न थे। कुछ बड़े मोटे और वज़नी सिक्के थे, जिन पर लिखित शब्द हम पढ़ तक न सकते थे। हीरे कुछ बहुत ही बड़े और बहुमूल्य थे—कुल मिला कर ११० और उनमें से एक भी छोटा न था। अठारह चमकते हुये लाल थे। तीन सौ दस नीलम थे, जो सभी सुन्दर और बहुमूल्य थे। इक्कीस पुखराज थे और एक पन्ना था। ये रत्न सन्दूक में बिखरे पड़े थे। जिन स्वर्ण आभूषणों से ये रत्न उखाड़े गये थे, वे बिगड़ी हुई रूप-रेखा में उसी सन्दूक में पाये गये थे। इसके अलावा वहाँ ठोस स्वर्ण के कितने ही आभूषण थे, लगभग दो सौ भारी अँगूठियाँ और कर्णफूल, स्वर्ण की करधनी तीस-बत्तीस; तेरासी बहुत भारी तावीज, पाँच स्वर्ण के कड़े; एक बड़ा सोने का लोटा, जिसमें बहुत पच्चीकारी की गई थी। दो तलवारों की मूठें, जिन पर मीनाकारी के काम अंकित थे, और कितनी ही छोटी-मोटी वस्तुएँ जो मुझे इस समय याद नहीं आ रही हैं। इन बहुमूल्य पदार्थों का वज़न तीन मन से कम न था, और इसमें मैंने १९७ सोने की अँगूठियाँ भी गिनी थीं। हमने सन्दूक के सारे सामान का मूल्य लगभग तैंतालीस लाख रुपये आँका। (कुछ जवाहरातों को छोड़ कर और वस्तुओं को विक्रय करने के पश्चात् हमें पता चला कि हमने खजाने का बहुत कम मूल्य लगाया था।)

अन्त में जब हमने खज़ाने को भलीभांति उलट-पलट लिया और उस समय का हमारा कौतूहल किसी सीमा तक शान्त हो गया, तो लिग्रैंड ने इस अत्यन्त आश्चर्यजनक पहेली का रहस्य मुझे समझाया।

रेखा-चित्र दूसरी ओर कैसे बन गया, और क्यों यह खोपड़ी शक्ल-सूरत में हू-बहू मेरे रेखा-चित्र से मिलती थी। मैंने कहा न, कि इस सादृश्य से कुछ देर तक मैं आश्चर्य मे डूबा रहा! ऐसे सादृश्यों का ऐसा फल होता ही है। मस्तिष्क ऐसी प्रत्येक घटना का कारण बताना चाहता है, पर जब वह ऐसा करने मे असमर्थ होता है, तो क्षण भर के लिए संज्ञा-शून्य हो जाता है। पर जब मेरी मानसिक बेहोशी दूर हुई, तो मुझे पूर्व से भी अधिक आश्चर्य होने लगा। मुझे भली-भाँति स्मरण था, नहीं-नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास था कि जब मैंने उस परचे पर मकड़े का रेखा-चित्र खींचा, उस पर कोई दूसरा चित्र नहीं बना था, क्योंकि मुझे स्मरण था कि चित्र खींचने के पहले मैंने परचे को उलट-पलट कर देख लिया था। यदि खोपड़ी पहले बनी होती, तो मुझे अवश्य पता चल जाता। यह एक रहस्य था, जिसका उद्घाटन मेरा चकित मस्तिष्क उस समय न कर पाया; पर उस समय भी मुझे कुछ आभास-सा मिल गया था, उस सत्य का जिसे हमने कल रात्रि में खोज निकाला। मैं उसी समय उठा और उस परचे को दराज़ में बन्द कर मैंने तब तक उस विषय मे न सोचने का निश्चय किया, जब तक मैं एकान्त में न होऊँ।

"जब तुम चले गये और कल्लू खराटे भरने लगा, तो मैंने नियम पूर्वक उस रहस्य का उद्घाटन करने का निश्चय किया। पहले तो मैंने यह सोचा कि किस प्रकार वह परचा मेरे पास आया। जहाँ हमने यह मकड़ा पड़ा पाया था, वह स्थान द्वीप में पूर्व की ओर एक मील हट कर था। जब मैंने मकड़े को पकड़ा, तो उसका कोई नुकीला अंश मेरी अँगुली में चुभ गया और वह मेरे हाथ से छूट कर कुछ दूर लुढ़क गया। कल्लू तो सदा बड़ी सावधानी से काम करता है। उसने मकड़े को पकड़ने के लिए पत्ती आदि ढूँढनी चाही, जिसे हाथ में लेकर वह उस मकड़े को पकड़े। तभी मेरी

और रज्जू की दृष्टि एक साथ ही उस पन्ने पर पड़ी, जिसे हमने उस समय कागज़ ही समझा था। वह बालू में आधा गड़ा हुआ था, और उसका एक कोना बाहर निकला था। उसी के पास मैंने किसी जहाज़ की लम्बी नौका के अंजर पंजर बिखरे देखे। बहुत वर्षों से वे वहाँ उसी भाँति पड़े होंगे, क्योंकि मस्तिष्क के बहुत परिश्रम करने के पश्चात् मैं उन टुकड़ों का किसी जहाज़ की लम्बी नौका से सादृश्य जोड़ पाया था।

घटनाओं में तारतम्य प्रतीत हो रहा था। समुद्र के किनारे पड़ी हुई नौका से अधिक दूर नहीं, एक भोजपत्र—कागज नहीं—पर खोपड़ी का चित्र बना हुआ था। तुम पूछोगे कि दोनों में सम्बन्ध कहाँ है? तुम जानते ही होगे कि खोपड़ी समुद्री डाकुओं का चिह्न है, विशेष कर—नहीं, यह मैं तुम्हें बाद मे बताऊँगा।

"तो मैंने तुम्हें बताया ही है कि पुरजा भोजपत्र का था, कागज का नहीं। भोजपत्र स्थायी होता है। छोटी-मोटी बातें भोजपत्र पर नहीं लिखी जातीं, क्योंकि इस पर लिखने या चित्र बनाने में कागज़ के मुकाबले में कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इससे ही मुझे उस पुरजे और खोपड़ी में सम्बन्ध ज्ञात हुआ। मैंने भोजपत्र की शक्ल-सूरत पर भी ध्यान दिया। यद्यपि एक कोना फट गया था, फिर भी भोजपत्र काफी लम्बा और सीधा कटा हुआ था। ऐसे ही पुरजों पर वे चीज़ें लिखी जाती हैं, जिन्हें लिखनेवालों का उद्देश्य चिरकाल तक सुरक्षित रखने का होता है।"

"पर," मैंने बीच में टोका—"तुम कहते हो कि खोपड़ी का चित्र परचे पर न था, जब तुमने मकड़े का चित्र खींचा। फिर क्यों तुमने उस नौका और खोपड़ी के बीच सम्बन्ध स्थापित किया? क्योंकि तुम्हारे कथनानुसार उस पर खोपड़ी का चित्र, तुम्हारे चित्र खींचने के पश्चात् ही (ईश्वर ही जानता है, कैसे और किसके द्वारा) बनाया गया होगा?"

"यही तो इसका रहस्य है; यद्यपि मुझे इस समस्या को सुलझाने में अधिक माथापची न करनी पड़ी। मैं ठीक मार्ग से चल रहा था, इसलिए परिणाम निश्चित ही था। उदाहरणार्थ मैंने इस भाँति सोचा—जब मैंने मकड़े का रेखा-चित्र खींचा, तब परचे पर कोई खोपड़ी का चित्र दिखाई न पड़ता था। मैंने चित्र खींच कर तुम्हें वह परचा दिया। मैं तुम्हें ध्यानपूर्वक देख रहा था, जब तक तुमने

"अब मैंने खोपड़ी के चित्र का पूर्ण रूप से अध्ययन किया। इसके बाहरी निशान भीतरी रेखाओं से कहीं अधिक साफ दिखाई पड़ते थे। इसलिये यह विदित ही था कि उष्णता सब स्थानों पर उचित परिमाण मे न पहुँच पाई थी। तत्काल ही मैंने आग जलाई और परचे के प्रत्येक स्थान को ज्वाला दिखाई। पहले तो बस यही अन्तर प्रतीत हुआ कि बाहरी रेखाये तीव्र हो गईं, पर अधिक समय तक परचे को अग्नि के समीप रखने से परचे के चौथे कोने मे कुछ रेखायें उभरने लगीं, जिसे ध्यानपूर्वक देखने पर मुझे पता चला कि कोई पुरुष किसी देवी के पैर पकड़े था।

"अधिक चेष्टा करने पर देवी के गले मे नरमुण्डों की माला दिखाई पड़ी। मैंने उसे दुर्गा समझ लिया।"

"हां! हां! मैंने कहा—"कहते जाओ।"

"पर मैंने तुम्हें अभी बताया है, न कि कोई पुरुष उसके चरणों पर सिर झुकाये था। हाँ, तो मैंने उसे हस्ताक्षर समझा। चूँकि मनुष्य की पोशाक भारतीय प्रतीत होती थी, और दुर्गा भी भारतीय देवी है, इसलिने मैंने मनुष्य का नाम दुर्गादास अथवा दुर्गाचरण सोचा। पर कितनी ही चेष्टा करने पर समुद्री यात्राओं की मेरी पुस्तकों में कहीं इधर एक दो शताब्दि मे किसी ऐसे डाकू का नाम नहीं मिलता।

"उस समय मुझे स्मरण आया कि दुर्गा को डाकू काली कहते हैं। काली बङ्गाल मे ही क्या, भारतवर्ष के और प्रान्तों मे भी डाकुओं द्वारा मानी जाती है। मेरी एक पुस्तक में सन् १८७२ के कालीचरण नामक डाकू का परिचय है। तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि देवी के चरण जो एक पुरुष पकड़े है, वह कालीचरण के हस्ताक्षर का ही द्योतक है। मैंने हस्ताक्षर शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि परचे पर ऐसे ही स्थान पर वह चिन्ह बना था—नीचे कोने में। तुम कह सकते हो कि सम्भव है, वह देवी का चिन्ह किसी डाकू की भक्ति का निर्देशक

की बहुत सी कहानियाँ सुनी होंगी, पानेवालों की नहीं। यदि उस समुद्री डाकू ने धन निकाल लिया होता, तो इन किंवदन्तियों का वहीं अन्त हो जाता। मेरे विचार से तो कदाचित् उसने अपनी डायरी खो दी होगी, जिसमें उसने उस धन के छिपे स्थान के विषय में लिख रखा होगा। और इसलिये वह किसी भाँति भी उस धन को पा न सका। इसीलिए यह बात उसके साथियों को ज्ञात हो गई होगी, इसीसे उन्होंने गुप्त धन को पाने के लिये इस द्वीप में भी अथक प्रयत्न किये; नहीं तो उन्होंने उसकी झलक भी न पाई होती। पर उनके सब प्रयत्न निष्फल हुए, और इससे ही इतनी किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गईं। क्या तुमने कभी किसी सुविख्यात धन के इसी द्वीप के तट पर पाये जाने की बात सुनी है?"

"नहीं।"

"पर कालीचरण का खजाना बड़ा विशाल था, यह सभी जानते हैं। इसलिए मैंने यह अनुमान किया कि अभी भी वह पृथ्वी के गर्भ में होगा, और तुम्हें भी कदाचित् आश्चर्य न होगा, यदि मैं तुमसे अब कहूँ कि मुझे प्रतीत हुआ कि उस भोजपत्र के टुकड़े में ही उस खजाने का छिपा स्थान लिखा था—मेरा भाग्य निहित था।"

"फिर तुमने क्या किया?"

"मैंने उस पर्चे को खूब आँच दिखाई, पर कुछ फल न हुआ। मैंने सोचा कि कदाचित् गर्द की पर्त से उस पर उष्णता का प्रभाव नहीं हो रहा था। इसलिए मैंने उस परचे को गर्म पानी से धोया, फिर उसे मैं एल्युमोनियम के बरतन में रख कर धधकती हुई अग्नि के समीप ले गया। खोपड़ी का भाग नीचे की ओर था। जब बरतन भलीभाँति गर्म हो गया, तो एक चिमटी से मैंने कागज उठाया, मुझे उस पर स्थान-स्थान पर कुछ अंक दीख पड़े, मेरे हर्ष का क्या ठिकाना ...।

इसकी सरलता मे विश्वास करते हुए एक साधारण मल्लाह के मस्तिष्क का माप लेने मे क्या कठिनाई थी ?"

"तो क्या तुमने सचमुच इसे पढ लिया था ?"

"सरलतापूर्वक, इससे सहस्त्रों गुने कठिन परचे मैंने पढ लिये हैं, फिर इसकी क्या बिसात! भाग्यवश कहो अथवा मुझे ऐसी बातों में मज़ा ही आता है, कि ऐसे कितने ही मेरे सम्मुख आये और मेरा यह विश्वास हो चला है कि ज़रा सी मेहनत से ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसके रहस्य का मानवी मस्तिष्क उद्‌घाटन न कर सके। आरम्भ मे सोचना भर पड़ता है।

इस बार—जैसा कि सभी बार होता है—मुझे यह सोचना पडा कि यह किस भाषा में लिखा गया है, क्योंकि प्रत्येक भाषा की गुप्त लिपि का स्वरूप दूसरा होगा, और उसे समझने की चेष्टाएँ भी भिन्न-भिन्न ही होंगी। अधिकाशतः प्रत्येक भाषा को लेकर देखना पड़ता है, जो बैठ जाय; पर इसमें वैसी कोई कठिनाई नहीं हुई। श्यामाचरण और दुर्गादास शब्द में जो समानता दिखाई गई थी, उससे मुझे यही जँचा कि यह हिन्दी भाषा ही है, और मेरा अनुमान ठीक निकला। नहीं तो मुझे फ्रेंच, स्पेनिश, अँगरेज़ी, बँगला आदि भाषाओं का सहारा लेना पड़ता। खैर, भाषा हिन्दी है—ऐसा मैंने निश्चय किया।

"तुम देखते ही हो कि शब्दों के बीच में स्थान नहीं छोडे गये हैं। यदि स्थान छोडे जाते, तो मेरे लिए काम करना बडा सहज हो जाता। मैं छोटे-छोटे शब्दों से आरम्भ करता और उनमें कई बार व्यवहार किये जाने वाले शब्दों का आसानी से पता लगा लेता। इसलिए अब मुझे अधिक व्यवहार में आने वाले और कम व्यवहार में आने वाले शब्दों की तालिका बनानी पडी।

फिर उस पर्चे को बरतन में रख, मैंने एक मिनट और गर्म कि
इस बार अक्षर साफ-साफ उतर आये थे। तुम स्वयं देखो।"

गिरीश ने पर्चे को गर्म कर मुझे देखने के लिए दिया। रोशनाई में ये अक्षर, खोपड़ी और देवी के चित्र के बीच हुए थे —

में न डाल कर, मैं बताये देता हूँ कि जहाँ वह मकड़ा गिरा, उस बिन्दु को वृक्ष से मिला कर, उस सीध में ५० फुट की दूरी पर खोदने से मुझे वह अतुल धन-राशि मिली।"

"पर यह तो बताओ," मैंने पूछा, "पहली बार क्यों गलत स्थान पर खोदने लगे थे?"

"ऐसा हमारे कल्लू द्वारा बायीं आँख पहिचानने में भूल करने के कारण हुआ। उसी से यह फर्क पड़ गया।"

"बस, एक बात और बताओ, उस गड्ढे में इतनी हड्डियाँ क्यों पड़ी थीं?"

"भाई, इसका उत्तर मैं बिलकुल ठीक तो नहीं दे सकता, पर मेरा एक अनुमान है। कालीचरण भयकर दस्यु था, वह किसी का भरोसा नहीं कर सकता था और इसलिए जब मज़दूर खुदाई कर रहे थे, तो उसने बन्दूक की मूठ के वारों से मज़दूरों को उसी में धराशायी कर दिया। उस खाई में इस भाँति कितने पुरुष सो गये—दस या बारह, कौन कह सकता है?"

मे न टाल कर, मैं बताये देता हूँ कि जहाँ वह मकडा गिरा, उस बिन्दु को वृक्ष से मिला कर, उस सीध में ५० फुट की दूरी पर खोदने से मुझे यह अतुल धन-राशि मिली।"

"पर यह तो बताओ," मैंने पूछा, "पहली बार क्यों गलत स्थान पर खोदने लगे थे?"

"ऐसा हमारे कल्लू द्वारा बायीं आँख पहिचानने में भूल करने के कारण हुआ। उसी से यह फर्क पड गया।"

"बस, एक बात और बताओ, उस गड्ढे में इतनी हड्डियाँ क्यों पडी थीं?"

"भाई, इसका उत्तर मै बिलकुल ठीक तो नहीं दे सकता, पर मेरा एक अनुमान है। कालीचरण भयकर दस्यु था, वह किसी का भरोसा नहीं कर सकता था और इसलिए जब मज़दूर खुदाई कर रहे थे, तो उसने बन्दूक की मूठ के वारों से मज़दूरों को उसी मे धराशायी कर दिया। उस खाई मे इस भाँति कितने पुरुष सो गये—दस या बारह, कौन कह सकता है?"

सप्ताह तक वहीं रहना था। उस महल का स्वामी सलीम मेरा बड पुराना मित्र था। बचपन से ही हम एक दूसरे को जानते थे, पर हम लोगों को मिले हुये बहुत वर्ष हो गये थे। जब दूर देश में मुझे उसका पत्र मिला, तो मुझसे बिना आये न रहा गया। उसकी लिखावट से ही लिखनेवाले की बेचैनी का आभास होता था। उसने तीक्ष्ण शारीरिक वेदना का वर्णन किया था—उसकी दिमागी बेचैनी का भी उसमें ज़िक्र था और उसने मुझसे अपने अकेले सुहृद के नाते अनुरोध किया था कि मैं उसके पास जा कर उसके कष्ट में कमी करने की चेष्टा करूँ। उसकी प्रार्थना मे इतना दर्द था कि मैं उसको पूर्ण करने से पीछे हट ही न सकता था और इसीलिये इतने शीघ्र ही मैं उसके महल के पास पहुँच गया था।

यद्यपि लुटपन में हम अभिन्न मित्र थे, पर सच पूछो तो मैं उसके विषय मे अधिक न जानता था। वह चुपचाप जो रहता था। पर मुझे इतना पता था कि उसके महान् वंशजो के विषय में यह प्रसिद्ध था कि उनके ख्याल बड़े बारीक होते थे। उन नाजुक दिमागों की दान-शीलता भी प्रसिद्ध थी। यह भी मै जानता था कि उस वंश की जड़ कभी भी मज़बूत नहीं हुई, एक-एक संतान द्वारा वंश किसी प्रकार चलता भर रहता था। यही सब मैं अपने मस्तिष्क में उलट-पलट रहा था। मैंने सोचा कि यही बात थी, जो परंपरा से ऊसर के महल का स्वामी उसका एकमात्र अधिकारी होता रहा था—यह जानते हुए कि उसके पश्चात् उसकी सन्तान उसकी एकमात्र अधिकारिणी होगी। और इसीलिये धीरे-धीरे उस वंश को भी लोग ऊसर वंश ही समझने लगे थे।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि घोड़े से उतर कर महल देखने से, हृदय में अधिक परिवर्तन न हुआ, मेरे भय में हुई। मुझे भूत-प्रेत आदि में विश्वास नहीं है, पर पता नहीं

मुझे घूर कर देखा और आगे बढ गया। नौकर ने दरवाजा खोल दिया और मुझे अपने मालिक के सम्मुख उपस्थित किया।

जिस कमरे के भीतर मैंने स्वय को पाया, वह बहुत बडा और ऊँचा था। खिडकियाँ लम्बी-लम्बी और दूर-दूर पर स्थित थीं। काम किये हुये काँच के बीच से रोशनी छन-छन कर आ रही थी, जिससे सब वस्तुये साफ-साफ दिखाई पड रही थीं—यद्यपि उतनी रोशनी में कमरे के कोनों को देखना सभव न था। दीवारों पर गहरे रग के परदे लगे थे। फर्नीचर कमरे में बहुत कम था। कुछ किताबें और कुछ गाने बजाने का सामान इधर-उधर फर्श पर पड़ा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे शोक-सागर में लाकर छोड दिया गया था। चारों ओर शोक दृष्टिगत हो रहा था।

मेरे भीतर जाने पर सलीम उठा। वह अभी तक मसनद के सहारे लेटा था। उसने बडे तपाक से मेरा स्वागत किया। पहले तो मुझे उसमें आधिक्य का आभास हुआ, पर फिर मुझे याद आया कि मेरा दोस्त दुनियावी आदमी न था। उसके चेहरे पर एक नजर फेकते ही मुझे उसके सच्चेपन का पता चल गया। हम बैठ गये, और कुछ क्षणों तक, जब कि वह चुप था, मैं उसकी ओर देखता रहा। कुछ दया थी मेरी निगाह में, कुछ दहशत थी। सच पूछो तो कोई मनुष्य इतने कम समय में इतना अधिक नहीं बदल सकता, जितना ऊसर सलीम बदल गया था। जरा कुछ मुश्किल से मैंने अपने सामने बैठे पुरुष को पहिचाना—ओफ्, वही सलीम ऊसर था। फिर भी उसके चेहरे पर एक अद्भुत भाव सदा मौजूद था। उसकी बडी आँखों में कुछ चमक-सी थी, ओठ कुछ पतले थे, जो, इस समय नीले हो रहे थे, फिर भी बहुत सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। सुन्दर सुग्गे की-सी ढली नाक थी और गोल ठोटी। साफ रेशमी बाल थे, पर माथे पर झुर्रियाँ पड चली थीं, जो उसकी परेशानी की गवाही देती थीं। और

अधिक रोशनी मे उसकी आँखों को तकलीफ होने लगती थी और कुछ तारवाले वाद्यों से उसे रोमाच हो आता था।

सराश यह कि मैंने उसे भयभीत पाया। "मै मर जाऊँगा," उसने कहा—"इसी गडबडी में मेरी मृत्यु हो जायगी। इस भाँति मे सदा के लिए पृथ्वी पर से उठ जाऊँगा। मुझे भविष्य में आने वाली घटनाओं की चिन्ता नहीं है, उनके फलों की अवश्य है। मैं अपनी आत्मा का परिणाम नहीं सोच पाता। मुझे अपने भय का परिणाम ज्ञात नहीं हो पाता है, न उसकी रूप-रेखा से ही मैं अवगत हूँ, पर इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि ऐसी परिस्थिति अधिक समय तक नहीं टिकने की। मुझे शीघ्र ही जीवन और चिंतन शक्ति से हाथ धोकर 'भय' से घोरतम युद्ध करना होगा।"

बीच-बीच में कुछ ऐसे चिह्न उसके वार्त्तालाप में प्रकट हो जाते थे, जिनसे मैंने उसकी आन्तरिक दशा का कुछ अनुमान लगाया। जिस भवन में वह रहता था उसके विषय मे कुछ अद्भुत विचारों ने मेरे मित्र के हृदय मे स्थान कर लिया था। उस घर से वह कभी बाहर न निकलता—उस घर का कौन-सा प्रभाव उस पर था, यह भी वह न जानता था; पर उसके हृदय पर एक अज्ञात बोझ सदा रखा-सा रहता था। उस घर की दीवारें उसे काट खाने को दौड़ती थीं। कुछ भायँ-भायँ-सा करता रहता था। उस समय उसे ऐसा प्रतीत होता, जैसे वह भुतहे घर मे रहता हो।

इस सब का कुछ कारण भी था। जहाँ तक वह जानता था, संसार में एक बहिन को छोड़ कर और उसका कोई न था। उसकी बहिन बहुत दिनों से अस्वस्थ थी और ऐसा प्रतीत होने लगा था कि वह इस काया का शीघ्र ही परित्याग कर देगी। इन लम्बे वर्षों में वही सलोन की एकमात्र साथिन रही थी। "उसके मर जाने से," मेरे मित्र ने कहा—"ऊषर वंश का मैं अन्तिम प्राणी शेष रहूँगा।" जब

बना दी थी, जिससे उसके चारों ओर—उसके सम्पर्क मात्र से शोक छा जाता था। ऐसी शोक की मूर्त्ति को प्रसन्न कर सकने की किसमें सामर्थ्य थी?

जीवन भर मैं उन घण्टों को न भूल सकूँगा, जो मैंने अपने मित्र ऊसर के साथ बिताये। फिर भी यदि आप समझें कि मैं ठीक-ठीक बता सकूँगा कि वह क्या पढता था अथवा क्या किया करता था, तो आप भ्रम में हैं। उसके जीवन सम्बन्धी अपने अनोखे विचार थे, जिनमें अस्वाभाविकता की मात्रा अधिक थी। आज भी उसका वार्त्तालाप मेरे कानों में गूँज उठता है। उसकी चित्रकला भी कुछ ऐसी ही थी; कुछ शीतलता उसमें थी, जिसकी स्मृति मात्र से आज भी मैं काँप उठता हूँ। लिखित शब्दों में चित्रित विचारों को प्रकट करने की चेष्टा-करना सर्वथा निष्फल प्रयास नहीं तो और क्या है? पर एक बात तो तय है कि उसके भाव इतने सरल होते थे, उसकी योजनाएँ इतनी नग्न होती थीं कि दर्शक भयभीत हो जाता था। यदि कभी किसी मानव ने भावना चित्रित की है और उसमें उसे किंचित् भी सफलता मिली है, तो वह सलीम ऊसर ही था। कम से कम मेरे विषय में तो यह बात लागू थी ही। कनवास पर मेरी दृष्टि पडते ही एक अजीब सिहरन से मैं भर उठता।

एक दृष्टान्त इस दिशा में आपका सहायक होगा। मेरे मित्र ने एक ऐसी चौकोर खोह या सुरङ्ग का दृश्य दिखाया था, जिसका न ओर था न छोर। उसमें कोई द्वार या खिड़की तक न थी, फिर भी पूर्ण सुरङ्ग में एक ऐसी घूमती हुई ज्योति थी जिससे दर्शक भयभीत हो जाता था। चित्र इतना सुन्दर बना था कि सुरङ्ग की गहराई का उससे अच्छा भान होता था।

संगीत के विषय में भी मैं अपने मित्र की विचित्रता का वर्णन कर चुका हूँ। कुछ बाजों को छोड़ कर औरों का सुनना भी वह सहन

बड़ा भारी था और खुलते तथा बन्द होते समय बड़ी भयावनी आवाज़ करता था।

उस बोझ को पृथ्वी पर रख कर हम शोकाकुल हृदयों से मुड़ने ही वाले थे कि भाई अपनी बहिन की लाश का मुख देखने का लोभ संवरण न कर सका। उसने ताबूत का ढक्कन खोल डाला। भाई और बहिन के मुखों में अद्भुत सादृश्य था, यह मैंने लक्ष्य किया। ऊसर को कदाचित् मेरी भावना का ज्ञान हो गया, क्योंकि उसने उसी समय मुझे टूटे-फूटे शब्दों में सूचित किया कि वे जुड़वा भाई-बहिन थे और उन दोनों में सदा एक अज्ञात-सा सम्बन्ध स्थापित रहता था। उस रोग ने जिसने उस युवती को असमय में ही काल-कवलित कर दिया था, युवती के मुख और वक्ष पर कुछ नीली-सी आभा भी छोड़ दी थी और ओठों पर एक हलकी सी मुस्कान, जो मृत के मुख पर अत्यन्त भयानक प्रतीत होती थी। हम लोगों ने फिर ढक्कन रख कर कीले जड़ दीं और दरवाज़ा मज़बूती से बन्द कर हम उस भयावने तहखाने से निकल कर रहने वाले कमरे में आये।

कुछ दिनों तक तो मेरा मित्र अथाह शोक-सागर में डूबता-उतराता रहता। उसका साधारण मुख-विन्यास विनष्ट हो गया था। साधारणतः जिन कृत्यों में वह लीन रहता था, उनकी ओर वह आँखें उठा कर भी न देखता। वह एक कमरे से दूसरे कमरे में घूमता फिरता। उसके घूमने में कोई प्रयोजन दृष्टिगत न होता। उसके मुख पर अब पीलेपन के साथ कालिमा भी आ रही थी। उसके नेत्रों की चमक लुप्त हो गई थी। उसके स्वर में भी अस्थिरता (एक अजीब खोखलापन) दृष्टिगत होती थी। कभी-कभी तो मैं सोचने लगता कि उसके मस्तिष्क पर किसी गुप्त रहस्य का बोझ था, जिसके कारण वह अविरत चिंतन में निमग्न रहता था। पर उस रहस्य को बताने की उसमें शक्ति न थी।

कभी कभी मुझे अपने मित्र में पागलपन के चिह्न भी दिखाई पड़ते।

थी। उसके पश्चात् मैंने फिर पुस्तक पढ़नी चाही। एक
की—जिस प्रकार का वर्णन में पुस्तक में पढ़ता था,
ज़ मुझे इमारत के किसी सुदूर भाग से आती हुई प्रतीत
अत्यन्त भय हुआ। शीघ्रतापूर्वक उठ कर मैं ऊसर की
बढ़ा। उसका शरीर पूर्ववत् धीरे-धीरे हिल रहा था, पर
पत्थरवत् प्रतीत होने लगा था। जैसे ही मैंने उसके कन्
वह चौंक पड़ा। उसके ओठों पर एक हलकी मुस्का
मैंने उसे अस्पष्ट रूप से बोलते सुना। यह प्रत्यक्ष था कि
गति का ज्ञान न था। उसकी ओर झुकने पर मैंने उ
—"नहीं सुनते हो? हाँ, मैं सुन रहा हूँ। बहुत समय से
से, बहुत घण्टों से, बहुत दिनों से मैं यह सुनता आ रह
साहस न होता था। ओह, मैं कितना दयनीय व्यक्ति हूँ
करो। मुझे बोलने की हिम्मत न होती थी। हम लोगों
गाड़ दिया है। क्या मैंने तुम्हें नहीं बताया कि मेरी श्रव
तीक्ष्ण है? मैं अब तुम्हे बताता हूँ कि मैं इस समय उ
हिलते हुये सुन रहा हूँ। मैं बहुत पहले से सुन रह
दिनों से; पर मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी—मेरी बोल
हीं पड़ रही थी। अहा हा! आज उस कहानी के नाय
पड़ी का द्वार तोड़ डाला है! कहो, क्या वह अप
कर बाहर नहीं निकल सकती! ओह, मैं कहाँ भाग
र क्षण भर में यहाँ न आ जायगी? क्या वह मेरे पा
ताड़ना देने के लिये जल्दी नहीं कर रही है? क्या मैंने
पद-ध्वनि नहीं सुनी है? क्या-मैं
हृदय को सुन नहीं सकता हूँ?
और चिल्ला कर कहने
इस समय वह द्वार के बाहर
८

उसके हाथ में एक लैम्प था। उसका मुख पूर्ववत् पीला था; पर उस समय उसके नेत्रों मे एक अद्भुत, किन्तु भयावनी ज्योति दिखाई पड रही थी। इससे मेरे रोंगटे खडे हो गये, पर जिस भयानक एकात में मैं था, उससे तो यह कुछ अच्छा ही था, अतः मुझे ऊसर के आगमन से सतोष ही हुआ।

"और तुमने इसे नहीं देखा?" उसने अचानक पूछा; कुछ देर तक वह मेरी ओर बिना पलक झपके देखता रहा था—"तो तुमने इसे नहीं देखा है? परन्तु ठहरो! तुम अभी देखोगे।" यह कह कर उसने लैम्प को सफाई से ढँक दिया और एक खिडकी खोल दी। बाहर का तूफान भीतर प्रतीत होने लगा।

इतनी जोर की वायु का झोंका आया कि हमारे पैर उखड गये। तूफानी रात होने पर भी अत्यत सुन्दर दृश्य था, क्योंकि भयानकता में भी एक विशेषता होती है। वायु कभी एक ओर से बहती, कभी दूसरी ओर से। बादल इतने घने थे कि प्रतीत होता था कि मुख को स्पर्श कर रहे थे। हम लोग चन्द्रमा या तारे न देख सकते थे। हां, कभी-कभी विद्युत अवश्य चमक कर अपनी छटा दिखा जाती थी। कुछ तरल सी वस्तु हमारे चारों ओर फैली-सी प्रतीत होती थी। सारी इमारत उसी में उतरा रही थी।

"तुम्हें इसे नहीं देखना चाहिये!" मैंने कहा। उसे मैं खिडकी के पास से एक कुर्सी की ओर ले गया—"तुम्हें ऐसी बातों से भ्रम हो सकता है। विद्युत की चमक कोई अनोखी बात नहीं। हम को [illegible] लेनी [illegible] वायु में ठढक बहुत है और यह [illegible] प्रिय उपन्यास, [illegible] मैं [illegible] । हम लोग इस

दिव्य पुस्तक

उसके हाथ में एक लैम्प था। उसका मुख पूर्ववत् पीला था; पर उस समय उसके नेत्रों मे एक अद्भुत, किन्तु भयावनी ज्योति दिखाई पड रही थी। इससे मेरे रोंगटे खडे हो गये; पर जिस भयानक एकात मे मैं था, उससे तो यह कुछ अच्छा ही था, अतः मुझे ऊसर के आगमन से सतोष ही हुआ।

"और तुमने इसे नहीं देखा?" उसने अचानक पूछा, कुछ देर तक वह मेरी ओर बिना पलक झपके देखता रहा था—"तो तुमने इसे नहीं देखा है? परन्तु ठहरो! तुम अभी देखोगे।" यह कह कर उसने लैम्प को सफाई से ढँक दिया और एक खिडकी खोल दी। बाहर का तूफान भीतर प्रतीत होने लगा।

इतनी जोर की वायु का झोंका आया कि हमारे पैर उखड गये। तूफानी रात होने पर भी अत्यत सुन्दर दृश्य था, क्योंकि भयानकता मे भी एक विशेषता होती है। वायु कभी एक ओर से बहती, कभी दूसरी ओर से। बादल इतने घने थे कि प्रतीत होता था कि मुख को स्पर्श कर रहे थे। हम लोग चन्द्रमा या तारे न देख सकते थे। हाँ, कभी-कभी विद्युत अवश्य चमक कर अपनी छटा दिखा जाती थी। कुछ तरल-सी वस्तु हमारे चारों ओर फैली-सी प्रतीत होती थी। सारी इमारत उसी मे उतरा रही थी।

"तुम्हें इसे नहीं देखना चाहिये!" मैंने कहा। उसे मैं खिडकी के पास से एक कुरसी की ओर ले गया—"तुम्हे ऐसी बातों से भ्रम हो सकता है। ऐसे अधड मे विद्युत की चमक कोई अनोखी बात नहीं। हम को खिडकी बन्द कर लेनी चाहिये थी। वायु में ठढक बहुत है और यह तुम्हें कष्ट पहुँचायगी। यह लो, अपना एक प्रिय उपन्यास, अथवा मैं ही इसे पढता हूँ, तुम चुपचाप बैठ कर सुनो। हम लोग इस भयानक रात्रि को साथ-साथ व्यतीत करेंगे।"

वह एक साधारण पुस्तक थी, और मैंने उसे ऊसर की प्रिय पुस्तक

की पुष्टि होती थी। उसके पश्चात् मैंने फिर पुस्तक पढनी चाही। एक बात मैंने लक्ष्य की—जिस प्रकार का वर्णन मैं पुस्तक में पढता था, वैसी ही आवाज़ मुझे इमारत के किसी सुदूर भाग से आती हुई प्रतीत होती थी। मुझे अत्यन्त भय हुआ। शीघ्रतापूर्वक उठ कर मैं ऊसर की कुरसी की ओर बढा। उसका शरीर पूर्ववत् धीरे-धीरे हिल रहा था, पर उसका मुख पत्थरवत् प्रतीत होने लगा था। जैसे ही मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखा, वह चौंक पडा। उसके ओठों पर एक हलकी मुस्कान खेल गई, और मैंने उसे अस्पष्ट रूप से बोलते सुना। यह प्रत्यक्ष था कि उसे मेरी उपस्थिति का ज्ञान न था। उसकी ओर झुकने पर मैंने उसे यह कहते सुना—"नहीं सुनते हो? हाँ, मैं सुन रहा हूँ। बहुत समय से, बहुत मिनटों से, बहुत घण्टों से, बहुत दिनों से मैं यह सुनता आ रहा था, पर मुझे साहस न होता था। ओह, मैं कितना दयनीय व्यक्ति हूं! मुझ पर दया करो। मुझे बोलने की हिम्मत न होती थी। हम लोगों ने उसे जिन्दा गाड दिया है। क्या मैंने तुम्हे नहीं बताया कि मेरी श्रवण शक्ति अत्यत तीक्ष्ण है? मैं अब तुम्हे बताता हूँ कि मैं इस समय उसे कफन में भीतर हिलते हुये सुन रहा हूँ। मैं बहुत पहले से सुन रहा था—हाँ, कई दिनों से; पर मेरी हिम्मत नहीं पड रही थी—मेरी बोलने की हिम्मत नहीं पड रही थी। अहा हा! आज उस कहानी के नायक ने साधु की झोपडी का द्वार तोड डाला है! कहो, क्या वह अपना कफन तोड कर बाहर नहीं निकल सकती? ओह, मैं कहाँ भाग कर जाऊँ? क्या वह क्षण भर में यहां न आ जायगी? क्या वह मेरे पास आकर मुझे उलाहना देने के लिये जल्दी नहीं कर रही है? क्या मैंने सीढी पर उसकी पदध्वनि नहीं सुनी है? क्या मैं भयानक रूप से उसके धडकते हुये हृदय को सुन नहीं सकता हूँ? पागल!" इसी समय वह उठ खडा हुआ और चिल्ला कर कहने लगा—"पागल! मैं तुम से कह रहा हूँ कि इस समय वह द्वार के बाहर खडा है!"

बावरी शराब

रजीत की सैकड़ों ज़्यादतियाँ मैं सह चुका था, पर जब उसने मुझे बेइज़्ज़त करने पर ही कमर बाँधी, तो फिर मैंने बदला लेने की ठानी। सोचा—रहो बच्चू, यदि तुम्हें इसका मजा न चखाया तो मैं असल तुर्क नहीं! पर मैं ऐसा भोला-भाला न था कि उसे अपने दिल के मन्सूबों की झलक भी लगने देता।

आखिरकार समय आ ही गया था उससे बदला लेने का—भरपूर बदला, जिसे जन्म भर न भूले—जन्म भर ही क्या यदि उसका पुनर्जन्म हो तो भी उसे याद रखे। पर मैं अपने को खतरे में न डालना चाहता था। 'साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे!' मुझे इस बात का पूरा भरोसा था कि उससे भरपूर बदला लेने से मेरे दिल को तसल्ली पहुँचेगी।

रजीत वैसे तो बड़ा भला आदमी था। यदि उसमें एक कमी न होती तो मैं उसे अवश्य ही श्रद्धा की दृष्टि से देखता। उसे गर्व था शराब के विषय में अपनी जानकारी पर। हुँह, कितने कम हिन्दुस्तानी शराब के विषय में कुछ भी जानते हैं। इन्हें पानी पीना आता है पानी, शराब तो ज़रा-सी ओठों से लगी कि ये—

'मदहोश बना दे मुझे
मदहोश बनाने वाली!'

गुन-गुनाने लगते हैं। ये दोआबा के निरक्षी मराठों और बंगालियों को शराब के बारे में चाहे बेवकूफ बना लें; पर मुझे, एक असल तुर्क को, ये अपनी चाल-बाज़ी में नहीं फाँस सकते। पर इतना तो मैं

"बाबरी शराब !"

"और मैं उस शक को दूर करना चाहता हूँ।"

"बाबरी शराब !

"और चूँकि तुम्हे इस समय फुरसत नहीं है, इसलिये मैं मन्नूलाल के पास उसकी शिनाख्त के लिये जा रहा हूँ।"

"मन्नूलाल ! उसे तो ताडी और अंगूरी शराब में भी भेद न मालूम होगा।"

"और तब भी कुछ बेवकूफ कहते हैं कि वह तुम्हारी भाँति ही निपुण है।"

"चलो, हम चलें।"

"कहाँ ?"

"तुम्हारे तहखाने में।"

"नहीं दोस्त, मैं तुम्हे व्यर्थ ही परेशान नहीं करना चाहता। मैं देख रहा हूँ कि तुम कहीं न्योते में जा रहे हो। मन्नूलाल..."

"नहीं, मैं कहीं नहीं जा रहा हूँ—चलो।"

"नहीं दोस्त, नहीं। तुम्हें शायद जुकाम हो गया है और मेरे तहखानों में बड़ी सीलन है। उसमें दीवारों और छत सभी पर शोरे की परत जमा रहती है।"

"तो इससे क्या। मैं चलने को तैयार हूँ। मामूली जुकाम है। 'बाबरी शराब'! अवश्य ही तुम्हें धोखा दिया गया है। और मन्नूलाल ! उसे तो ताड़ी और अंगूरी शराब में फर्क निकालने की भी तमीज़ नहीं है।"

यह कह कर रजीत ने मेरा हाथ पकड़ा और तेजी से मुझे मेरे घर की ओर ले चला। इतनी उत्कंठा थी उसे। उस समय मेरे घर पर कोई नौकर-चाकर न थे। मैंने उनसे कह दिया था कि मैं दूसरे दिन सुबह के पहले न लौटूँगा और उन्हें चेतावनी दे दी थी कि वे घर से

शराब मैं खोलता हूँ। इसे हम तुम पीकर आगे बढ़ेंगे। फिर सीलन हमें छू भी न सकेगी।

"पिओ," मैंने उसके आगे बोतल करते हुये कहा।

उसने दाँत निकालते हुये मुझे धन्यवाद दिया और ओठों से उसे लगा लिया। उसके पैर काँप रहे थे। घुँघरू झनन-झनन बज उठते थे।

"मैं पीता हूं," उसने कहा—"उन लोगों के सम्मान में जो आस-पास गड़े हुये हैं।"

"और मैं तुम्हारे दीर्घ जीवन के लिये।" उसने फिर मेरा हाथ थाम लिया और हम आगे बढ़े।

"ये तहखाने बहुत बड़े हैं" उसने कहा।

मैंने कहा—"और क़िबला खाँ का वश भी वीर और विशाल था।"

"तुम्हारा चिह्न क्या है, मैं भूल रहा हूँ।"

"एक बैंगनी रंग की ढाल पर मनुष्य का विशाल पैर, जिसके नीचे एक भयंकर सर्प कुचला जा रहा है।"

"और तुम्हारे वश का मूल मंत्र?"

"अपमान का बदला लिये बिना मरने से दोजख नसीब होता है।"

"हूँ!" उसने कहा।

उसकी आँखों में शराब की चमक थी। घूँघरू झनन झनन बज उठते थे। मुझे भी नशा चढ़ रहा था। हमारे दोनों ओर शराब के पीपे जमा थे। धीरे-धीरे हम आगे बढ़ रहे थे। अचानक मैं ठहर गया। उस समय हम गोमती के ठीक नीचे थे। किसी किसी स्थान पर कभी टप से पानी की एक बूँद चू पड़ती थी। रजीत के कंधे पर हाथ रखते हुये मैंने कहा—"देखो शोरे की तह मोटी होती जा रही है। हम गोमती के ठीक नीचे हैं। अभी भी लौट चलो, नहीं तो फिर हो सकता है हम कभी न लौट सकें। तुम्हारी खाँसी—"

व्यर्थ ही रजीत ने अपनी बुझती मशाल उठा कर उसके भीतर प्रकाश करना चाहा। उसके क्षीण प्रकाश मे वह उस कालकोठरी का अन्त न देख सकता था।

"आगे बढ़ो"—मैंने कहा—"यहीं बावरी शराब रखी है। और मन्नूलाल—

"वह सिडी है।" उसने कहा और आगे बढ़ा। पर आगे दीवार से टकरा कर वह चकरा गया। कुछ ही क्षणों मे मैंने अपना मतलब सिद्ध कर लिया। आगे दीवार में तीन फुट की दूरी पर दो लोहे के कडे लगे थे। जिनमें से एक मे छोटी-सी लोहे की जज़ीर लगी थी और एक ताला भी लटक रहा था। मैंने झट जजीर उठा कर दूसरे कडे में पहिना दी और ताला बन्द कर दिया। रजीत आश्चर्य में डूबा हुआ था, उसने मेरा प्रतिरोध न किया। ताला बन्द कर मैंने ताली निकाल ली और पीछे हट आया।

मैंने कहा—"अपना हाथ चारों ओर दीवार पर फेरो। देखो, कितनी मोटी शोरे की तह जमा है। यह कितनी सीली कालकोठरी है। मै तुमसे कह रहा था न कि लौट चलो। न लौटो और न लौटो! अब मै तुम्हें यहीं छोड जाऊँगा। परन्तु इसके पहले जो कुछ मै तुम्हारे लिये कर सकता हूँ, करूँगा।

"बावरी शराब!," मेरे मित्र ने कहा। उसे अभी तक अपनी दयनीय दशा का ज्ञान न हुआ था।

"हूँ," मैंने कहा—"बावरी शराब!"

यह कहते हुये मैं हड्डियों के ढेर की ओर झुका। और कुछ हड्डियों को हटा कर उसके नीचे से मैंने लखावरी ईंटें और गारा निकाला। फिर अपनी कटार की मदद से मैं फुर्ती से उस कालकोठरी के दरवाजे को बन्द करने लगा।

मैंने मुश्किल से दो कतारें ईंटों की जोड़ी होंगी कि मुझे पता चला

कि मुझे एक धीमा भयानक हास्य सुनाई दिया, मेरे रोंगटे खड़े हो गये। इसके बाद ही एक शोकाकुल स्वर सुनाई पड़ा। उसके पहिचानने में मुझे देर न लगी। वह मेरे प्यारे मित्र रजीत ही का था। उसने कहा—"हा! हा! हा—ही! ही! ही!—अच्छा मजाक रहा। सच कहता हूँ बहुत सुन्दर मजाक। मैं अपने मित्रों से इसकी चर्चा अवश्य करूँगा और वे भी इस पर बहुत दिनों तक हँसते रहेंगे—ही! ही! ही! जब हम शराब पीने बैठेंगे—ही! ही! ही!"

"बावरी शराब," मैंने कहा।

"ही! ही! ही!—ही! ही! ही! बावरी शराब—ही! ही! ही! पर यह तो बताओ देर तो नहीं हो रही है। शीश महल में मेरी पत्नी मेरे मित्रों के साथ मेरी प्रतीक्षा तो नहीं कर रही होगी? चलो, अब हम चलें!"

"हाँ!" मैंने कहा—"चलो अब हम चलें।"

"खुदा के वास्ते, रहम कर खाना।"

"हाँ!" मैंने कहा—"खुदा के वास्ते।"

पर व्यर्थ ही मैं किसी उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। फिर मुझसे न रहा गया, मैंने ज़ोर से पुकारा—"रजीत!"

कुछ उत्तर नहीं। मैंने फिर पुकारा—"रजीत!"

फिर भी कुछ उत्तर नहीं। मैंने उस छोटे से छेद से एक मशाल अन्दर गिरा दी। केवल घूँघरुओं की झनन-झनन सुनाई दी। मेरा हृदय धक् से रह गया, कदाचित् उस तहखाने की सीलन से ऐसा हुआ हो। मैं अपनी मेहनत को समाप्त करने के लिये शीघ्रता करने लगा। आखिरी ईंट लगा कर ऊपर से मैंने पलस्तर कर दिया। इस नई दीवार के आगे मैंने हड्डियाँ पहले की भाँति सजा दीं। इन तीस वर्षों से किसी जीवित पुरुष ने उन हड्डियों को छुआ नहीं है।

दुर्ग में खाद्य सामग्री की कमी न थी। ... लाल दानव के चगुल से बचायेगी, ऐसा ... ससार अपनी रक्षा आप करेगा। इस बीच ... था। राजा ने सुख की सारी सामग्री एकत्रित ... किये थे, राज-नर्तकियाँ थीं, वाद्य और गान के ... सुन्दरता और मदिरा। इन सब के साथ वहाँ ... सभावना भी थी। बाहर था—लाल दानव।

पाँच या छ: मास पश्चात् जब लाल दानव ने ... में पूरी तौर से आतक जमा रखा था, तब राजा प्रजाहित ... नक़ाबपोश के नृत्य का आयोजन किया।

यह नृत्य नहीं था—कामुक दृश्य था। सात कमरों में ... का आयोजन किया गया था। सब कमरे साज-सामान से ... किसी-किसी राजमहल में ऐसे कमरे एक सीध में होते हैं, और ... भाँति खिसक कर दीवाल से सट जाते हैं कि सब कमरों को ... ही नज़र में देख सकता है। पर यहाँ कुछ और ही बात थी। ... पति को असाधारणता से ही विशेष प्रेम था। कमरे इस भाँति बने ... कि एक बार में एक से अधिक कमरा न दीख पड़ता था। प्रत्येक ... या तीस गज पर एक तीव्र मोड़ आ जाता था, और प्रत्येक मोड़ पर ए... अजीब दृश्य।

प्रत्येक कमरे की एक दीवाल में एक खिड़की थी, जो एक बरा... में खुलती थी। प्रत्येक खिड़की रंग बिरंगे काँच की बनी थी, और उस... रग वही था, जो उस कमरे के अधिकाश पदार्थों का था। उदाहरण... एक छोर पर खिड़की में बिलकुल नीला काँच लगा था, दूसरे कमरे... सारा साज बैंगनी था, तीसरा हरा था, चौथे में नारगी रग की व... थी, पाँचवाँ श्वेत था, छठा ... और सातवाँ कमरा काले मखमल... वस्तुओं से सुसज्जित था। फ़र्श पर ... कालीन भी काले थे। पर...

वह रंगों के प्रभाव से भलीभाँति परिचित था। उसकी दृष्टि में फैशन ऐसी कोई वस्तु न थी। उसकी योजनायें विकट और दुरुह होतीं। कुछ लोग तो उसे पागल ही समझते, पर उसके साथियों का ऐसा विचार न था। यह आवश्यक था कि उसके विषय में कोई धारणा बनाने के पहले, उसे अच्छी तरह देख सुन लिया जाय।

उन सातों कमरों को उसने उस दिन विशेष रूप से सजाने की आज्ञा दी थी, और विभिन्न पुरुषों और स्त्रियों को उसने अपनी इच्छानुसार वेश भूषा धारण करने के लिये मजबूर किया था। फिर राजा और उसके दरबारी रंगरेलियाँ मना रहे थे। कितने तो बिना पूँछ के बंदर प्रतीत होते, तो कितने दूसरे जीव ही लगते। यदि बहुत से सुन्दर प्रतीत होते, तो दूसरों को कुरूप कहने में भी किसी को अधिक हिचकिचाहट न होती। इधर-उधर उन सात कमरों में वे घूम रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि वे स्वप्न जगत् में विचर रहे हों। कुछ बाजे के स्वरों को पैरों से ताल देने की चेष्टा में रत थे। इतने में आबनूस की घड़ी उस काले मखमलावृत कमरे में टन् टन् करने लगी। और फिर क्षणमात्र में ही सब निस्तब्ध हो गये। केवल घड़ी की टनटनाहट ही सुनाई पड़ रही थी। सबके स्वप्न भग्न हो गये। सब पाषाणवत खड़े थे। आखिरी 'टन्' बजा, फिर उसकी प्रतिध्वनि भी नष्ट हो गई, लोग धीरे-धीरे हँसे। फिर गायन-वादन आरम्भ हुआ। वे फिर स्वप्न-जगत में विचरने लगे। इधर से उधर कमरों में फुदकने लगे। फिर उनके मुखों पर काँच की खिड़कियों से आती हुई ज्योति क्रीड़ा करने लगी। पर उस काले कमरे में, जहाँ आबनूस की घड़ी थी, कोई जाने का साहस न करता, क्योंकि रात्रि का अवसान निकट था। उस रक्त रंजित काँच की खिड़की से अधिक रक्तवर्ण ज्योति आ रही थी। काले मखमल पर पड़ कर वह गजब ही ढाती थी। जिसका पैर उस काले मखमल की कालीन पर पड़ता, उसे आबनूस की घड़ी से आती हुई एक प्रतिध्वनि

रही थी। इतना होते हुए भी मद-मस्त राजा और उसके दरबारियों में अधिक त्रास न फैला होता, यदि यह पता लगता कि वह लाल दानव है। उसके वस्त्रादि रक्त में तर थे, चौड़ी भौहों के पास ही क्यों, सारे मुख पर ही लाल चकत्ते थे।

यह भीषण कंकाल धीरे-धीरे स्थिर गति से चल रहा था। जब राजा प्रजाधिपति की दृष्टि उस पर पड़ी, तब पता नहीं, भय से अथवा घृणा से, वह सिहर उठा। दूसरे ही क्षण वह आग-बबूला हो गया था।

"कौन है?"—उसने अपने दरबारियों से रुँधे गले से पूछा—"किसने यह धृष्टता करने का साहस किया है? उसे पकड़ कर उसकी नक़ाब उतार लो, जिससे हमें पता चल जाय कि किसे कल प्रातःकाल फाँसी की टिकटी पर चढ़ाना है!"

पूर्वी या नीले कमरे में राजा प्रजाधिपति था। उसकी आवाज़ सातों कमरों में गूँज गई। सभी ने उसे साफ़-साफ़ सुना, क्योंकि राजा प्रजाधिपति तगड़ा और रोबीला था। उसके हाथ हिलाते ही गायन-वादन बन्द हो गया था।

नीले कमरे में राजा प्रजाधिपति खड़ा था। उसके आस-पास कुछ दरबारी खड़े थे। उनके चेहरे पीले पड़ गये थे, वे थर-थर काँप रहे थे। पहले तो कुछ दरबारियों ने आगे बढ़ कर नवागंतुक को रोकने की चेष्टा की, पर नवागंतुक सीधे स्थिर गति से प्रजाधिपति की ओर बढ़ता आ रहा था। और पता नहीं क्यों, किसी को साहस न हुआ कि वह हाथ बढ़ा कर उसे रोके। इसलिये धीरे ही वह बिना किसी बाधा के राजा के बिलकुल पास आ गया, और जब कि पूरी मजलिस, जैसे एक राय हो, कमरों के बीच से हट दीवालों से सट गई थी, जिससे नवागंतुक का मार्ग साफ़ रहे। नवागंतुक धीरे-धीरे नीले कमरे से काही, काही से हरे, हरे से नारंगी, नारंगी से श्वेत, श्वेत

मेढक

मावली के नवाब जैसा मजाक-पसन्द आदमी मैंने नहीं देखा। ऐसा जान पडता था कि मज़ाक़ ही उसके जीवन का एक मात्र ध्येय है। एक मजेदार कहानी सलीके से कोई उसे सुना दे फिर तो वह नवाब का कृपापात्र बन जाता था। उसके सातों वजीर भी मशहूर मज़ाक़ करने वाले थे। और नवाब ही की भाँति सभी मोटे तगड़े, तेल मले से प्रतीत होते थे। पता नहीं मजाक़ से लोग मोटे होते हैं या मोटापे में ही कुछ ऐसी विशेषता है कि वह लोगों की हर एक बात मे मज़ाक़ का पुट दे देती है, मैं कभी ठीक से निर्णय न कर पाया। पर यह तो नितान्त सत्य है कि यदि ब्रह्मा भी दीपक ले कर ढूँढे, तो इस पृथ्वी पर शायद ही उन्हें कोई दुबला मज़ाकिया मिले।

मज़ाक़ बहुत अच्छा हो, उसमें जरा भी बेहूदगी न हो, ऐसा उस बिगडे दिल नवाब का विचार न था। मज़ाक़ में बस बारीकी होनी चाहिये जो दिल पर चोट कर जाय। और ज़रा से मज़ाक़ के लिये नवाब लम्बी से लम्बी, नीरस कहानी तक सुनने के लिये सदा प्रस्तुत रहता था। यदि कहीं मज़ाक़ व्यावहारिक हो तो फिर उसकी खुशी का क्या ठिकाना।

जिस समय की घटना का बयान मैं कर रहा हूँ, उस समय पेशेवर मज़ाकियों की भी कमी न रहती थी। राजा-महाराजा नवाब सभी के

न कूदना ही। इसलिये वह नवाब के मनोरंजन की वस्तु था। और फिर नवाब के मनोरंजन के अर्थ उसके दरबार के मनोरंजन के होते थे। नवाब का सिर विशालता में उसके पेट से टक्कर लेता था और हँसते हँसते नवाब के पेट में बल पड जाते थे।

मेढक! मैं भी उसे इसी नाम से पुकारूँगा, क्योंकि उसका ठीक नाम मुझे भी नही मालूम। न मैं समझता हूँ कि उसकी कुछ ऐसी आवश्यकता है।

यद्यपि मेढक पैरों के टेढ़े मेढे होने के कारण कठिनाई से चलता था, पर इस कमी को उसकी भुजाओं की ताकत पूरी कर देती थी। वह बहुत से ऐसे कार्य कर सकता था, जो दो मोटे से मोटे मन्त्री मिलकर भी न कर पाते। पेडो और रस्सियों के साथ तो उसका खेल मज़ेदार ही होता था। एक गिलहरी की फुर्ती से वह पेड़ों पर चढ़ सकता था, और बन्दर की भाँति एक डाल से दूसरी डाल पर कूद सकता था इन कार्यों के लिए मेढक न होकर गिलहरी या बन्दर ही था।

मुझे ठीक पता नहीं कि मेढक की जन्म-भूमि कहाँ थी। कोई असभ्य देश होगा जिसका नाम किसी को ज्ञात नहीं, पर इतना मुझे पता है कि किसी सुदूर पूर्व के गर्म देश से वह नवाब के दरबार में लाया गया था। मेढक, और एक बौनी सुन्दरी उस देश से बलपूर्वक उड़ा लाये गये थे। बौनी सुन्दरी दरबार की एक प्रसिद्ध नर्तकी थी। नवाब के किसी विजयी सेनापति ने इन्हें नवाब को भेंट किया था।

इसलिये यदि इन दोनों नाटे बन्दियों में एक दूसरे के प्रति प्रत्यक्ष सहानुभूति उत्पन्न हुई, तो इसमें आश्चर्य ही क्या! सच पूछो तो उनमें शीघ्र ही घनिष्ट मित्रता हो गई। मेढक यद्यपि सुप्रसिद्ध मज़ाकिया था फिर भी उसके वश में ऐसी कोई बात न थी जिससे वह उस बौनी सुन्दरी का दु:ख हलका कर सके। पर वह मानिय सुन्दरी (यद्यपि

वह पागल-सा हो जाता है, और पागलेपन कोई मजेदार चीज तो है नहीं। पर नवाब को अपने व्यावहारिक मजाकों पर घमड था और उसे मेढक को शराब पीने के लिये विवश करने में बड़ा मजा आता था।

"मेढक, इधर आओ," उसने उनके कमरे में घुसते ही कहा—"और यह प्याला अपने पुराने साथियों की स्मृति में चढा जाओ।" मेढक ने एक ठण्डी साँस ली। नवाब कह रहा था—"और फिर अपनी विलक्षण खोपडी की सूझ का परिचय दो। बताओ कि हम क्या बनें, कोई नई चीज़, नई, आश्चर्यजनक, असाधारण। हम रोज-रोज की पुरानी बातों से बिलकुल ऊब गये हैं। लो, पिओ। शराब तुम्हारी बुद्धि तीक्ष्ण कर देगी।"

मेढक ने पहले की भाँति चेष्टा की कि वह नवाब को कोई पुर-मज़ाक़ उत्तर दे जिससे उसे शराब न पीनी पड़े, पर उसे उस समय कुछ न सूझा। उसी दिन बेचारे की वर्षगाँठ थी और पुराने मित्रों की स्मृति में शराब पीने की आज्ञा ने उसकी आँखों में आँसू ला दिया। उसने उस निरकुश शासक के हाथ से प्याला ले लिया। शराब पीते समय उसके नेत्रों के कितनी ही बूँदें प्याले में गिरीं।

"अहा! हा! हा" नवाब खिल-खिलाकर हँसा—जब उसने इस भाँति बेचारे बौने को शराब पीते देखा। नवाब ने कहा—"देखो, एक प्याला अच्छी शराब क्या कर सकती है? तुम्हारी आँखें चमकने लगी हैं।"

बेचारा बौना! उसकी आँखें नहीं चमक रही थीं, पर उनमें आँसू अवश्य चमक रहे थे। सुरापान ने तत्काल ही अपना प्रभाव दिखना आरम्भ कर दिया। उसने प्याला खाली कर फर्श पर रख दिया

गई थी। वह धीरे से नवाब की ओर बढी और उसके सम्मुख घुटने टेक कर अपने देश के भाई के लिये प्रार्थना करने लगी।

नवाब कुछ क्षणों तक तो आश्चर्य-पूर्वक उसकी ओर देखता रहा। उसे सलीमा से ऐसे व्यवहार की आशा न थी। उसकी समझ में न आ रहा था कि सलीमा को ऐसी धृष्टता के लिये वह क्या सजा दे। अन्त में, बिना कुछ कहे उसने उसे दूर धकेल दिया और उसके मुख पर प्याले की शराब फेंक दी।

बेचारी सलीमा उठ कर बैठ गई। वह उफ़ भी न कर सकती थी।

इसके पश्चात् कुछ क्षणों तक सन्नाटा छाया रहा। सुई के गिरने की आवाज़ भी सुनाई पड जाती ऐसी निस्तब्धता थी। उसी समय उस शांति को भेदता हुआ दाँत पीसने का एक धीमा स्वर सुनाई पडा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह कमरे के सब कोनों से आ रहा हो।

"क्या—क्या, तुम ऐसी आवाज़ क्यों कर रहे हो?" नवाब ने बौने की ओर मुड़ते हुये पूछा।

बौना अब शराब की खुमारी में न था। उसकी आँखें नवाब के चेहरे की ओर उठी हुई थीं।

"मैं—मैं, यह मेरा स्वर कैसे हो सकता है?"

एक वज़ीर ने कहा—स्वर तो बाहर से आता प्रतीत हो रहा था। मैं समझता हूँ कि तोता, पिंजडे की तीलियों पर अपनी चोंच रगड रहा था।"

"ठीक कहते हो," नवाब ने शांत होते हुये कहा—"यदि तुमने यह बात न कही होती, तो मैं तो यही समझता कि यह आवारा अपने दाँत पीस रहा था।"

"फिर क्या है।" नवाब हँसा। उसके वजीरों ने भी उसका साथ दिया।

"मैं आप लोगों का वेश इस तरह बदल दूँगा कि आप लोग बिलकुल औरंग-ओटांग लगेंगे। सादृश्य इतना अधिक होगा कि रँगरेलियाँ मनाने वाले आप लोगों को सचमुच जानवर समझ कर बहुत ही आश्चर्यचकित और भयभीत होंगे।"

"शाबाश मेंढक," नवाब ने कहा—"मैं तुम्हें इसके लिये बहुत पारितोषिक दूँगा।"

मेंढक कह रहा था—"और जंजीर में आप लोग इसलिये बँधे रहेंगे जिससे आप लोगों के चलने फिरने से जंजीर झनझनाये और लोगों में खूब सनसनी फैले। लोग सोचेंगे कि आठ औरंग-ओटांग अपने रक्षकों से एक साथ छूट गये हैं। हुजूर, आप स्वयं बुद्धिमान हैं; सोचिये तो ज़रा, आठ जंगली जानवर यदि सुन्दर युवकों और युवतियों के बीच में छोड़ दिये जायँ, तो उनमें कितना आतंक फैलेगा। और जब औरंग-ओटांग भयानक रूप से चिल्लाते हुए इधर-उधर भागेंगे, तो फिर कितना आनन्द आवेगा।"

"ऐसा ही होगा," नवाब ने कहा। और चूँकि शाम हो रही थी इसलिये मेंढक की योजना को कार्यान्वित करने के लिये सब उठ पड़े।

योजना कुछ कठिन न थी। पर उसने ये औरंग-ओटांग से प्रतीत होने लगे। बात यह थी कि उस देश में किसीने कभी औरंग ओटांग देखे न थे, इसलिये मेंढक ने मनमानी सलाह दी। बौने ने जो रूप इनका बनवाया वह काफी भयानक और जानवरों से मिलता-जुलता था, इसलिये किसी को उस पर सन्देह न हुआ।

सत्यानाश कर देता, क्योंकि कमरे में इतनी भीड होने से सभी कमरे के बीच मे कभी न कभी आते ही, वहाँ—जहाँ वह झाड़ लटक रहा था। कमरे के कोने में आलों पर मोमबत्तियाँ रख दी गईं और कमरे के चारों ओर दीवार से सटी खड़ी साठ दासियों मे से प्रत्येक के हाथ में सुगन्धित मशालें थीं।

आठों औरग-औटाग बौने की सलाह मान गये। रात्रि के ठीक बारह बजे विविध भेष-भूषा से सुसज्जित नर-नारियों से कमरा भरा हुआ था। जैसे ही बारह का अन्तिम घण्टा बजा सब के सब कमरे के भीतर दौड़ पडे। ज़जीर से बँधे होने के कारण वे एक दूसरे के ऊपर गिरे पडते थे।

स्त्रियों में बड़ा कोलाहल मचा। नवाब का हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। लोगों ने समझा कि ये सब रक्षकों से छूटे हुये जगली जानवर हे। बहुत सी स्त्रियाँ भय से सज्ञाहीन हो गईं और यदि नवाब ने पहले ही से लोगों से अस्त्र-शस्त्र लाने की मनाही न कर दी होती, तो इन आठों औरग औटागों का खात्मा ही हो गया होता। स्त्री-पुरुष सभी भयभीत होकर द्वारों की ओर भागे। पर उनमें तो ताले पडे थे और बौने के कहने से नवाब ने तालों की कुञ्जियाँ भी बौने के पास ही जमा कर दी थीं।

इस भाँति कोलाहल मचा हुआ था, और नर-नारी अपनी-अपनी रक्षा के लिये व्यस्त थे। भीड की भगदड से भी कोमलागियों को दब जाने का भय था। उस समय यदि कोई ध्यानपूर्वक देखता, तो उसे ज्ञात हो जाता कि जिस ज़जीर में पहले झाड लटकी रहती थी वह धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। होते होते वह भूमि से केवल तीन फुट ऊँची रह गई।

अब तक नवाब और उसके सातों वज़ीर चारों दिशाओं में घूम-

प्रतीत होता था कि वह इन छद्मवेषियों को पहिचानने की चेष्टा कर रहा है।

जजीर के ऊपर उठने से लोग आश्चर्य में पड गये और कुछ मिनटों तक तो किसी से मुख से कोई आवाज़ न निकली। इसी समय दाँत पीसने की एक धीमी आवाज़ ने निस्तब्धता भग की, ठीक वैसी ही आवाज़ जिसे नवाब और उसके वज़ीरों ने कुछ घटे पहले तोते का स्वर समझा था। इस समय किसी को सन्देह न हो सकता था कि स्वर कहाँ से आ रहा है। स्वर बौने के मटमैले बदबूदार दाँतों के पीसने और कटकटाने से पैदा हो रहा था। दाँत पीसते-पीसते उसके मुख में फेन आ गया था। वह इस समय पागलों की भाँति नवाब और वजीरों की ओर देख रहा था।

"अहा, हा!" अन्त मे मज़ाकिये ने कहा "अहा, हा! मैं अब समझ रहा हूँ कि ये लोग कौन हैं। हूँ!" इस बहाने से कि वह इन बन्दरों को और भलीभाँति देखना चाहता है, बौने ने मशाल जरा और नीचे की और नवाब के मोम के कपडे में आग लगा दी। आधे मिनट में ही आठों औरग-औटरग भकाभक जल रहे थे। वे स्वय चीख रहे थे और उनके साथ ही भयभीत दर्शक भी शोर मचा रहे थे। किसी में इतनी सामर्थ्य न थी कि वह इन जलते हुये पुरुषों की किंचित भी सहायता कर सके।

धीरे-धीरे अग्नि की लपटें ऊँची उठती गईं और मज़ाकिये को ऊपर चढना पडा। उसे ऐसा करते देख दर्शक चुप हो गये। मेढक को फिर कुछ करने का मौका मिला।

"मैं अब बिलकुल ठीक समझ गया हूँ" उसने कहा—"ये बहु-रुपिये कौन हैं! ये एक बुद्धिमान नवाब और उसके सातों बुद्धिमान सलाहकार हैं—नवाब जो कि एक असहाय युवती के मुख पर शराब